॥ हरिः ॐ ॥

श्रीमोटा

हरिः ॐ आश्रम प्रकाशन, सुरत

॥ हरिः ॐ ॥

श्रीमोटा

आलेखक : डॉ. रमेश म. भट्ट

अनुवादक : डॉ. कविता शर्मा 'जदली'

संपादक : रजनीभाई

(ट्रस्टी, हरिः ॐ आश्रम, सुरत)

हरिः ॐ आश्रम प्रकाशन, सूरत

प्रकाशक : ट्रस्टी-मंडल,
हरि:ॐ आश्रम, कुरुक्षेत्र, जहांगीरपुरा, सुरत-३९५००५.
फोन : (०२६१) २७६५५६४

© हरि:ॐ आश्रम, सुरत, नड़ियाद.

संस्करण : प्रथम

प्रतियाँ : २०००

मूल्य : .....

प्राप्तिस्थान : (१) हरि:ॐ आश्रम, जहांगीरपुरा, सुरत-३९५००५.
(२) हरि:ॐ आश्रम, पो. बो. नं. ७४,
नड़ियाद-३८७००१.

अक्षरांकन : दुर्गा प्रिन्टरी, अहमदाबाद.

मुद्रक : साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि.
सिटी मिल कम्पाउन्ड, कांकरिया रोड,
अहमदाबाद-३८० ०२२.
फोन : ०७९-२५४६९१०१

समर्पणांजलि

पू. श्रीमोटा के अनुरागी स्वजन-युगल

श्री .....

और

श्रीमती .....

को

यह प्रकाशन पू. श्रीमोटा के प्रति उनके प्रेमभाव और त्याग की कदर करते हुए अनके कल्याणार्थ पू. श्रीमोटा को प्रार्थना करते हुए सादर समर्पित करते हैं ।

– ट्रस्टी-मंडल

हरि:ॐ आश्रम, सुरत

दि. ३१-१-२००९

वसंतपंचमी

(पू. श्रीमोटा दीक्षादिन)

अनुक्रमणिका

१. भूमिका .....

२. पूर्वाभास .....

३. जीवन-प्रवेश .....

४. जीवन-उत्क्रांति .....

५. सूक्ष्म संग्राम यात्रा .....

६. परमपद प्रति .....

७. अवतरण .....

पूर्ति : पूज्य श्रीमोटा की आनंदलीला

परिशिष्ट

लेखक के दो शब्द

पूज्य श्रीमोटा का जीवन आँखों से देखा जा सके ऐसा नहीं है। पूज्य श्रीमोटा ने जीवन के इस प्रागट्य के लिए कठिन तपस्या और उद्देश्यपूर्ण साधना की है। इस साधना का इतिहास बहुत ही गूढ़ और न्यारा है, साथ ही गुप्त भी है। तब भी ..... परिचय उनके प्रकाशित ग्रंथों से प्राप्त कर सकते हैं।

पूज्य श्रीमोटा जिन प्रसंगों के साक्षी न रहे हों ऐसी सच्चाई सामान्य रूप से प्रगट नहीं करते। परन्तु अब तो उन्होंने प्रयोजित साधन के इतिहास की कितनी ही कड़ियों को प्रकाशित होने दिया है।

उनकी आध्यात्मिक साधना की भूमिका की झाँकी हो सके और परमपद के साक्षात्कार तक की प्रक्रिया का धुँधला-सा खयाल आ सके इस उद्देश्य से कितने ही महत्त्वपूर्ण प्रसंग और अंतरमंथन इस पुस्तक में दिये गये हैं; जबकि ये संपूर्ण नहीं हैं। साधना की कितनी ही सच्चाई इससे गुप्त होगी। पूज्य श्रीमोटा ने इसे व्यक्त होने ही नहीं दिया। यह तथ्य उनके द्वारा स्वजनों को लिखे पत्रों से एकत्र किया गया है।

पूज्य श्रीमोटा के सूक्ष्म और गूढ़ जीवन के प्रति आंशिक भी अभिमुखता बढ़ेगी तो प्रस्तुत पुस्तक के लेखन-प्रकाशन के पीछे का उद्देश्य परिपूर्ण होगा, ऐसी आशा है।

— रमेश म. भट्ट

३२, पंचवटी, मणिनगर,
अहमदाबाद-३८० ००८.

निवेदन

पू. श्रीमोटा, गूजरात के एक नामी संत, अपने वर्तमान समय में हो गए। गूजरात का जनसमाज आपश्री की समाजोत्थानक विशिष्ट मौलिक, अनौखी गुण-भाव विकासक प्रवृत्तिओं की श्रृंखला से लाभान्वित होने के परिणाम स्वरुप कुछ वर्षों से पहचानने लगा है। किन्तु आपश्री भीषण गरीबीपूर्ण अपमानजनक जीवन में अत्यंत गु.....पूर्वक साधना का घोर संग्राम खेलकर भगवत्प्राप्ति करके मनुष्य देह का हेतु सफल किया यह इतिहास से जनसमाज का विशाल वर्ग अपरिचित है। श्रेय साधकों को भगवत्प्राप्ति के पथ पर अग्रसर होने के लिए आपश्री का संघर्षपूर्ण, अनोखा, विस्तृत इतिहास एक दीपमीनार समान है। आपश्री के भगवत्मय जीवन के विभिन्न पहलूओं से सामान्य जनसमाज परिचित हो सके इस हेतु यह पुस्तक प्रकाशित किया गया है।

इस प्रकाशन का संपादन कार्य मुद्रणशुद्धि सहित ट्रस्टी मंडल के सभ्य श्री रजनीभाई ने संभावा है। अक्षरांकन और मुखपृष्ठ चित्रण कार्य बहुत सस्ते दाम से मे. दुर्गा प्रिन्टरी, अहमदाबाद ने पू. श्रीमोटा के प्रति अपना भक्तिभाव प्रदर्शित करते हुए किया है। हरहंमेश की तरह इस पुस्तक का संपूर्ण मुद्रण मुखपृष्ठ सहित श्री श्रेयसभाई पंड्य, मे. साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि., अहमदाबाद ने पू. श्रीमोटा के प्रति अपना भक्तिभाव प्रदर्शित करते बिलकुल नि:शुल्त किया है। उनका आभार मानने के लिए शब्दकोश के शब्द कम पड़ते है।

आशा है कि जनता-जनार्दन इस पुस्तक से उचित लाभ उठाये और अपना जीवन जीने योग्य बनायें।

— ट्रस्टी मंडल,
हरि:ॐ आश्रम, सुरत

दि. ३१-१-२००९
वसंतपंचमी
(पू. श्रीमोटा दीक्षादिन)

विभाग - १ : भूमिका

१. धन्य धरा गुर्जरी !

श्रीमोटा जैसे संतविभूति का आविर्भाव गुजरात की धरा पर हुआ, यह धन्यता और गौरव अनुभव करने जैसी बात है । श्रीमोटा के जीवन की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि समाज के अंतिम निचले स्तर के वर्ग में उनका जन्म हुआ था और भीषण एवं अत्यन्त गरीबी में उनका पालन-पोषण हुआ था ।

उनका जन्म ई. स. १८९८, सितम्बर महीने की चौथी तारीख–भाद्रपद कृष्ण पक्ष चतुर्थी को हुआ था । उनका जन्म स्थान वड़ोदरा जनपद के सावली गाँव था । उनकी माता का नाम सूरजबा और पिता का नाम आशाराम था । शनिवार के दिन उनका जन्म होने से उन्हें 'शनिया' नाम से सभी पुकारते थे । बाद में उनका नाम चूनीलाल रखा गया । ये दूसरे नंबर की संतान थे ।

सावली में उनका निवासस्थान मुख्य रास्ते पर था । उसके बाद का ठिकाना कालोल के संकड़े घर की तुलना में अनुपात में अच्छा बड़ा था । पड़ोस में जूते-चप्पल सीनेवालो की दूकान थी । इसलिए चमड़े की दुर्गंध सतत बनी रहती थी । उनके पिता आशारामजी का धंधा रंगरेज का था किन्तु जाति से भावसार थे । वे 'भगत' नाम से पहचाने जाते थे । आशाराम का स्वभाव यों तो भजनानंदी था । वे अफीम और हुक्के के शोकीन थे । उनकी हुक्का पीने की आदत के कारण वे अपने घर के आंगन में उपलों की अग्नि को प्रज्वलित रखवाते थे । रात को हुक्का पीने का मन हो तब उसमें से अग्नि को लेकर हुक्का पीते थे ।

किराये के छोटे से घर में रहनेवाला यह कुटुम्ब आर्थिक रूप से गरीब था । चूनीलाल (श्रीमोटा) के जन्म के बाद दूसरे दो पुत्रों का जन्म हुआ । चूनीभाई के बड़े भाई जमनादास । उनके छोटे दोनों भाई क्रमानुसार मूलजीभाई और सोमाभाई ।

पिता की कमाई से घर के सभी सदस्यों का भरणपोषण होना कठिन था । सूरजबा गाँव में अच्छे-सुखी घरों में कामकाज कर, चक्की में अनाज पीसकर मेहनत मजदूरी करती और कुटुम्ब का निर्वाह होता था ।

२. अपमानभरा आघात

बचपन में श्रीमोटा को एक भारी आघात लगा था । रात को चक्कर लगाते हुए पुलिस बहुत बार आशाराम भगत के पास बैठकर बातें किया करते । एक दिन उनके यहाँ मेहमान आये थे । उन दिनों लूट और चोरी की घटना न हो उसकी कड़ी निगरानी रखने के लिए कोली-वाघरी जैसे चोरी करने की आदतवाली जातियों के लिए, ऐसा नियम था कि कोई नया व्यक्ति घर में आये तो उसकी सूचना पुलिस-थाने में लिखवानी होती थी ।

रात को चक्कर लगाती पुलिस ने आशाराम के यहाँ आये नये मेहमान के विषय में पूछा । इतना ही नहीं, धमकाते हुए कहा, इसकी जानकारी पुलिस-थाने में क्यों नहीं दी ? आशाराम ने स्पष्ट कहा, 'हम इस विषय में क्यों जानकारी दें ? यह जानकारी तो कोली-वाघरी देते हैं ।' पुलिस इस वाक्य को सुनकर क्रोधित हो गया और आशाराम को मारते-मारते पुलिसचौकी ले गया ।

बालक चूनीलाल इस दिल दहलानेवाले दृश्य को सहन नहीं कर पाया । वह दौड़कर नागरवाड़ा (नागरों की बस्ती) में पहुँचा । वहाँ उनके प्रति सहानुभूति रखनेवाले मनुभाई रावसाहब के पास रोते-रोते सारी हकीकत कह सुनाई । मनुभाई ने पुलिसचौकी जाकर पुलिसों को धमकाकर आशाराम को छुड़वाया ।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अचानक आ पड़ी आपत्ति के समय चूनीलाल रोते हुए बैठे न रहे, जो कुछ सूझा वह किया । किन्तु इस अपमान के आघात ने उन्हें विचार करने को विवश किया । उन्होंने देखा कि गरीबों की अवहेलना होती है । इसलिए सभी हमें सलाम करें, ऐसा बनना चाहिए । इसके लिए तहसीलदार जैसा पद प्राप्त करना चाहिए । इसलिए पढ़ना चाहिए । उन्हें स्पष्ट लगा और गाँठ बाँध ली, किसी भी ढंग से अच्छा पढ़कर बड़े आदमी बने बिना ऐसी अपमानजनक स्थिति से छुटकारा नहीं हो सकता ।

३. क्रियाशील संकल्प

बड़ा आदमी बनने के लिए उन्होंने पढ़ने का संकल्प किया । विपरीत परिस्थिति में भी रास्ता निकालने की सूझ-बूझ रखनेवाले बालक चूनीलाल की स्मृतिशक्ति-बुद्धिशक्ति तेज थी । कालोल में नयी बनी ऍग्लोवर्नाक्यूलर मिडल स्कूल के हेडमास्टर को इस तेजस्वी बालक की शक्ति का पता लग चुका था । उन्होंने एक से चार कक्षा की पढ़ाई मात्र डेढ़ वर्ष में करवा डाली । बचपन से ही काल बचाने की यह सक्रियता एक विशिष्ट सिद्धि थी । सातवीं कक्षा तक की पढ़ाई की, तब तक गरीबी के कारण जिस

आर्थिक संकट का अनुभव हुआ वह उन्हें सालने लगा । उन्हें काम करने की तत्परता जागी ।

पड़ोस में रहते एक व्यापारी की दूकान से कचरा निकालना, पानी भरना, गद्दी बिछाना के अलावा दूसरे परचूरण कामकाज करने की नौकरी स्वीकार कर डाली । यह काम उन्होंने पूरी निष्ठा, उत्साह, प्रेम और सजगता से किया । इससे शेठ ने उन्हें मासिक पाँच रुपए वेतन पर स्थायी कर डाला ।

४. प्रामाणिकता

इस प्रकार की नौकरी करते हुए किशोर चूनीलाल को अनाज तौलने का काम सौंपा । गाँव से अनाज भरी गाड़ी का अनाज तौलने में ऐसी पद्धति अपनायी जाती कि एक मन अनाज पर दो से ढाई शेर तक अनाज अधिक तौला जाता । अनाज तौलने के काँटे पर वजन दर्शाते पलड़े की संकल को दूसरा कोई जान न सके इस तरह से झुका देना होता । इस चालाकी से सहज ढंग से अधिक अनाज तौला जाता । शेठ ने इस पद्धति को चूनीलाल को समझाया । चूनीभाई किसानों के साथ प्रेम से बातें करते, किन्तु अनाज तो ठीक से तौलकर ही लेते । शेठ ने इस बात को जाना तो उन्हें बहुत धमकाया और दुबारा व्यापारी ढंग से ही अधिक अनाज तौलने की सूचना दी । तब भी चूनीभाई ने यह तरीका नहीं अपनाया ।

एक बार किसी किसान की शेठ से तकरार होने पर अनाज का तौल ठीक है या नहीं, इसकी दुबारा जाँच हुई । चूनीभाई का तौला अनाज दूसरे आदमी से तुलवाया । इससे चूनीभाई की

प्रामाणिक तौलने की पद्धति सामने आ गयी । शेठ ने सभी के सामने गुस्से में चूनीभाई को बहुत धमकाया । इससे उन्होंने नौकरी छोड़ दी और पुनः पढ़ाई में एकाग्र हो गये ।

५. निष्ठा

पेटलाद हाईस्कूल से अच्छे अंकों के साथ मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर उन्होंने वडोदरा कोलेज में प्रवेश लिया । जिनकी सहायता से उन्होंने पढ़ाई की उनकी रकम कम से कम खर्च हो ऐसी निष्ठा के कारण वडोदरा में रहने-खाने की व्यवस्था किस ढंग से की जाई, उस पर उन्होंने विचार किया । कालोल के नागर जाति के एक भाई वडोदरा कोलेज में फेलो बने थे । चूनीभाई जिस समय कालोल में रहते थे, तब वे नागरवाड़ में जाते थे, तब कोई भी जिस काम को करने को कहते उसे प्रेम और उत्साह से करते । इससे वहाँ रहते लोगों को चूनीभाई के प्रति हमदर्दी थी ।

उन्होंने कालोल निवासी वडोदरा कोलेज के फेलो की रेसिडन्सी होस्टल के उनके कमरे में स्वयं को साथ में रखने की विनती की । उनके कमरे की व्यवस्था चूनीलाल ने संभाल ली ।

अब भोजन का प्रश्न बेचैन करे, ऐसा था । क्योंकि भोजन का मासिक खर्च तेबीस-चौबीस रुपए जितना होता था । इस खर्च जितनी रकम उन्हें मिल तो जाती, किन्तु किसी से प्राप्त सहायता का कम से कम उपयोग जिस ढंग से हो ऐसी भावात्मक निष्ठा उनमें सक्रिय थी । उन्होंने वडोदरा में मांडवी के पास चांपानेरी दरवाजे के पास ही वैष्णव हवेली खोज निकाली । वहाँ उनके मुखिया को मिलकर मंदिर की प्रसादी के लिए प्रेमभरी विनती

की । वैष्णव मंदिर की प्रसादी की पत्तल की कीमत डेढ़ आना (नये दस पैसे) थी ।

नित्य सुबह जल्दी कोलेज होस्टेल से निकलकर ढाई मील पैदल चलकर जाते । फुटपाथ पर चलते-चलते पढ़ते जाते । वहाँ जाकर नहाते । समय होने पर भोजन से निपटकर वांचन करते हुए वापस आते । इस ढंग से कोलेज का सत्र पूरा हुआ ।

६. सावधान

होस्टेल में रहते नागर विद्यार्थिओं की 'चाय-क्लब' में चूनीभाई चाय बनाते । दिन में दो-तीन बार चाय बनानी होती थी । वे मित्र जब सिनेमा देखने जाते तब चूनीभाई के लिए टिकिट भी ले आते । वे जहाँ फिरने जाते वहाँ चूनीभाई को साथ ले जाते ।

एक बार चूनीभाई को सिनेमा देखने का मन हुआ । ऐसी वृत्ति होते ही वे चौंके और सावधान हो गये, क्योंकि सिनेमा देखने की वृत्ति के अनुरूप आर्थिक स्थिति न थी । मित्रों की मदद से सिनेमा देखने जाना उन्हें ठीक न लगा । इससे उसी क्षण उन्होंने दृढ़ संकल्प किया कि मित्र सिनेमा देखने ले जाँय तब भी सिनेमा देखने नहीं जाऊँगा ।

७. मुक्ति संग्राम का पैगाम (संदेश)

कोलेज में पढ़ाई आनंद-उत्साह से चल रही थी । ऐसे में रोलेट एक्ट के सामने सत्याग्रह करने की घोषणा गांधीजी ने बीमारी के बिछोने से की । पंजाब में तूफान हुए । अंग्रेज सरकार ने दमन के कौड़े बरसाये । अंग्रेजों के हत्याकांड के सामने न्याय प्राप्त करने के लिए मुक्ति संग्राम का पैगाम गांधीजी ने दिया ।

युवक चूनीभाई का मन-हृदय गांधीजी के इस आदेश को ग्रहण कर चुका था। किन्तु स्वयं ने तो बड़े आदमी बनने का ध्येय निश्चित किया था। इसलिए कोलेज में तो पढ़ना तो पड़ेगा ही और फिर कुटुम्ब आर्थिक संकट में फँसा हुआ था। कुटुम्बी जनों की दृष्टि चूनीभाई पर थी। इसके अलावा पढ़ाई के लिए सहायता करनेवाले की तत्परता को भी किस ढंग से धुत्कारा जा सकता था ? साथ ही देशसेवा का धर्म भी युवक चूनीलाल के हृदय की आवाज दायित्वबोध जगा रही थी। युवा हृदय की इस ज्वाला को शांत करने के लिए उन्हें मदद करनेवाले स्वजनों ने समझाया। चूनीभाई ने तीव्र मंथन का अनुभव किया। शांत चित्त से सोचा। पुलिस द्वारा पिता को पीटा गया था, वह दृश्य सामने खड़ा हुआ। कोलेज प्रवेश का यह प्रेरक बल था।

इसके साथ उन्हें ऐसा भी लगा कि देश की आजादी की लड़ाई में जुड़ना यह प्रत्येक युवक का धर्म है। इस कार्य को युवा नहीं करेंगे तो कौन करेगा ? जीवन का प्रवाह स्वयं को नयी दिशा में ले जा रहा है, ऐसा उन्हें लगा। स्वातंत्र्य प्राप्ति के संग्राम में जुड़ने के विचार जोशीले थे।

कोलेज छोड़ने के बाद क्या ? भविष्य एकदम अंधकारमय था, अंधकार में ही कूदना था, क्योंकि कोलेज छोड़ने के बाद किसी की भी मदद मिलनेवाली नहीं थी। यदि कोई मदद करे भी तो मदद नहीं लेनी चाहिए। नौकरी करने की भी संभावना नहीं थी। दिन कठिन आनेवाले हैं। भविष्य में दयनीय स्थिति आनेवाली है, इसका ख्याल भी चूनीभाई ने कर लिया।

१९२० में गाँधीजी कलकत्ता की नेशनल कोंग्रेस में असहकार का प्रस्ताव रखनेवाले थे और उस प्रस्ताव को पारित करवानेवाले थे।

उससे पहले वडोदरा कोलजे के दो युवक कोलेज का त्यागकर असहकार करने निकल पड़े थे। उनमें पहले थे श्री पांडुरंग वळामे (पू. श्रीरंग अवधूत) और दूसरे श्री चूनीभाई भगत (पूज्य श्रीमोटा)।

८. विद्यापीठ का त्याग

कोलेज का त्याग करने के बाद राष्ट्रीय शिक्षण देती गूजरात विद्यापीठ में जुड़ने का विचार किया। विद्यापीठ में उन्होंने 'नवजीवन' बेचकर पढ़ाई करनी शूरू की। 'नवजीवन' बेचने से कितने पैसे मिल सकते हैं ? कभी तो चने फांककर दिन गुजारकर राष्ट्रीय शाला में पढ़ाई जारी रखी थी।

उसी दौरान गांधीनी ने विद्यापीठ में आकर युवकों को देशसेवा के कार्य में लग जाने का आह्वान किया। युवा चूनीभाई ने समाज में प्राण फूँककर देशसेवा करने का निश्चित किया। श्री गिडवाणीजी की अध्यक्षता में स्थापित 'स्वराज आश्रम' में तालीम लेकर भरूच जिल्ला के वागरा तालुका के पिछड़े वर्ग की सेवा करने गये। वहाँ उन्हें अनेक अवरोध और अल्प साधनों के कारण अनुकूल नहीं आया। उन्होंने पुनः विद्यापीठ में प्रवेश लेने का निश्चय किया। दुबारा प्रवेश प्राप्त करने के लिए परीक्षा देनी पड़ती थी, उस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

अब स्नातक होने के कुछ महीने शेष थे। वहीं धधकते हुए देश को मुक्त करने युवकों को पढ़ाई त्यागकर काम करने की पू. गांधी बापूने घोषणा की। इससे पुनः देशसेवा का संकल्प चूनीभाई में प्रबलभाव से प्रज्वलित हुआ। आजीवन देशसेवा करने के लिए स्वयं का संकल्प विचलित न हो इसलिए हाथ में गंगाजल लेकर व्रत लिया।

९. आत्मश्रद्धा

विद्यापीठ के स्नातक होने में तीन-चार महीने ही बाकी थे, तब भी उन्होंने डिग्री का मोह देश हित में छोड़ दिया और श्री इन्दुलाल याज्ञिक के साथ नड़ियाद में हरिजन सेवा के कार्य में जुड़ गये । इन्दुलाल याज्ञिक ने हरिजन सेवा संघ का काम छोड़ डाला । उसके बाद श्री चूनीभाई को यह काम की व्यवस्था का काम मासिक वेतन पैंसठ रुपये पारिश्रमिक पर मिला ।

कुटुम्ब के प्रति कर्तव्यनिष्ठा की सजगता से श्री चूनीभाई कुटुम्ब की सहायता करते थे । श्री इन्दुलाल याज्ञिक के साथ ही हरिजन सेवा में उनके बड़े भाई श्री जमनादास थे । उन्हें क्षयरोग होने से उनकी सेवा सुश्रूषा का और कुटुम्ब के पालनपोषन का दायित्व बोझ सबसे अधिक चूनीभाई के सिर पर था । हरिजनसेवा से प्राप्त रकम उन्हें प्रत्येक महीने नियमित नहीं मिलती थी । उन्हें विद्यापीठ की पाठशाला में काम के मासिक रुपए पचास मिलते थे । दोनों जगह निष्ठापूर्वक काम करने के लिए प्राप्त इस रकम के विषय में किसी ने गाँधीजी से शिकायत की । गाँधीजीने चूनीभाई को बुलाकर पूछा, ''इतनी छोटी उम्र में तुम अकेले दो संस्थाओं का काम किस तरह से करते हो?''

श्री चूनीभाई ने उत्तर दिया, ''William Pitt, the younger was the Prime Minister of England at the age of 24.'' (विलियम पिट्ट चौबीस वर्ष की उम्र में इग्लैन्ड के प्रधानमंत्री थे ।)

गाँधीजी ने युवक चूनीभाई के इस आत्मबल का हँसकर स्वागत किया । उन्हें किसी भी एक ही संस्था में काम करने का आदेश तो मिल ही चुका था ।

१०. मानसिक तनाव

बड़े भाई का राजरोग, कुटुम्ब के सदस्यों का पालनपोषन करने का दायित्व और वेतन काफी कम ।

'मेरा बेटा पढ़ा लिखा है। पहचान भी ठीक-ठीक है। मेहनती, होशियार और भावनाशील है। इसलिए इसके अच्छे स्थान पर नौकरी लगने से गरीबी दूर हो जाएगी।' सूरजबा के ऐसे अरमान हों, यह स्वाभाविक है । किन्तु चूनीभाई ने तो हाथ में गंगाजल लेकर व्रत ले लिया था । अच्छी जगह पर ऊँचे वेतन पर नौकरी मिल सके ऐसी संभावना थी । अफ्रीका में शिक्षक के रूप में नियुक्ति का पत्र भी मिल चुका था। एक स्नेही की सिफारिस से पेरिस में ऊँचे पद पर नौकरी की ओफर भी मिली । देशसेवा के लिए लिये व्रत की निष्ठा के गुण ने उन्हें टिकाये रखा था। सूरजबा आर्थिक संकट से अकुलाकर क्वचित ताने भी मारतीं थीं ।

बड़े भाई की क्षय की बीमारी में बहुत खर्च हुआ था। सिर पर काफी उधार हो गया था। हरिजन सेवक संघ में कठिन परिश्रम करना था। हिन्दुओं के सार्वजनिक कुँओं पर हरिजन बालकों को ले जाना, वहाँ से पानी भरने का साहस करना, किसान मार डालेंगे ऐसी धमकियों को सुनना, ऐसा करते हुए किसी बालक को कुछ हो जाएगा तो क्या होगा ? ऐसे विचारों के भँवरों के कारण मन भी बहुत बुरी तरह तनाव महसूस कर रहा था ।

• • •

विभाग - २ : पूर्वाभास

१. बीज

ऊर्ध्वजीवन की साधना का प्रारंभ १९२२ से प्रारंभ हो गया था, माना जा सकता है । लेकिन उसके पहले की कितनी ही घटनाएँ जीवन-विकास के मार्ग की बीज भूमिका में रही हैं ।

पुलिस का पिता के प्रति अपमानजनक हिंसक व्यवहार के कारण समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त करने का संकल्प बचपन से ही जाग चुका था । परिणामस्वरूप बहुत होशियारी, मेहनत और उत्साह से पढ़ाई की । इतना ही नहीं, कठिनाइयों के समय न डरकर उसका रास्ता निकालने हेतु सक्रिय बने रहना, यह गुण भी इसी प्रसंग से जीवन में आया ।

संकल्पबल, हिंमत और सक्रियता उनके जन्मजात गुण हैं । संत समागम की रुचि बचपन में थी । पेटलाद की शाला में पढ़ाई करते थे, तब श्री जानकीदास महाराज के पास जाते और उनकी सेवा करते थे । वहाँ की सफाई करते, उनके कपड़े धोते और चुपचाप उनके पास बैठे रहते । श्री जानकीदास दूसरों के साथ बातचीत करते । वे शांति से सुनते थे । किशोरावस्था से उनकी रुचि उच्चकक्षा की बातचीत के प्रति थी ।

२. संतकृपा

जब वे मैट्रिक में थे, तब श्री जानकीदास ने उन्हें शीघ्रता से पढ़ाई निपटा देने की सूचना दी । उसके कारण में उन्होंने बतलाया, 'तुम्हें बड़ी बीमारी आनेवाली है ।'

इसके अलावा श्री जानकीदासजी ने संस्कृत पाठशाला के आचार्य को संस्कृत का पाठ्यक्रम जल्दी से पूरा करा देने का अभिप्राय दिया । श्रीमोटा ने दो ढ़ाई महीने के कम समय में सारे वर्ष का पाठ्यक्रम सीखकर तैयार कर डाला । दूसरे विषयों की गाइड्ज पढ़कर परीक्षा देने जितनी तैयारी कर डाली थी । काम को कम समय में निपटाने की कला का गुण जीवनविकास की साधना में श्रीमोटा ने भावपूर्वक प्रयोजित किया था ।

अहमदाबाद में वे गंभीर रूप से बीमार पड़े और लम्बे समय तक बीमार रहे । शाला की प्रिलिमिनरी परीक्षा नहीं दे पाये । तेजस्वी प्रभाव के कारण मैट्रिक की परीक्षा देने के लिए मंजूरी मिली और मैट्रिक में उच्च अंकों से उत्तीर्ण हुए ।

इस बीमारी के दौरान श्री जानकीदास का वे बहुत ही भावपूर्ण स्मरण करते रहे और उन पर श्रीमोटा को बहुत ही प्यार था । 'श्री जानकीदास अनुभवी महात्मा थे ।' ऐसा श्रीमोटा आज कहते हैं ।

श्रीमोटा ने साधना का आरंभ किया उसके बाद साधना मार्ग की उलझन अपने अंतर में ही रखकर, कुछ भी कहे बिना, मन ही मन में प्रार्थना करते हुए श्री जानकीदास महाराज के पास जाते । श्री जानकीदास किसी दूसरे व्यक्ति के साथ के वार्तालाप में ही श्रीमोटा के मन में उठे प्रश्नों का समाधान कर संकेतित कर डालते ।

उन्होंने पूज्य सरयूदासजी महाराज का तथा नड़ियाद के संतराम मंदिर में आनेवाले अनेक साधु-महात्माओं का सत्संग किया था ।

पूज्य श्रीमोटा का पूज्य श्री गोदडिया महाराज (पूज्य स्वामी प्रकाशानंदजी) के साथ निजी सम्बन्ध था । वे पूज्य श्री गोदडिया महाराज के निकट परिचय में थे । वह निकटता आंतरिक और हार्दिक थी ।

३. मिरगी

युवक चूनीभाई के चित्त में देशसेवा की तमन्ना जाग चुकी थी । परिवार अत्यन्त गरीबी में था । कुटुम्ब के सदस्यों के पालन-पोषण का दायित्व सिर पर था । उनके बड़े भाई को क्षय का रोग था । उनके उपचार में कर्जा भी हुआ था । ऐसी कौटुम्बिक और आर्थिक अभाव एवं संकट के कारण उनके शरीर को मिरगी की व्याधि हो आई । किसी भी स्थान और समय पर शरीर का संपूर्ण नियंत्रण खो बैठते और गिर जाते ।

एक बार नर्मदा किनारे गये । वहाँ एक साधु ने उनकी ऐसी हालत देखकर कहा, ''लड़के, तुम 'हरि:ॐ' के नाम का जाप करो । तुम्हारा रोग मिट जाएगा ।''

श्रीमोटा को साधु के इस वचन पर श्रद्धा न थी । उस साधु ने जंगल की किसी जड़ीबूटी दे दी होती तो शायद युवक स्वीकार कर लेता ।

भगवान का नाम लेना वे स्वीकार नहीं कर पाये और 'अंत में ऐसे निर्माल्य जीवन की उपयोगिता क्या?' ऐसा सोचकर नर्मदा नदी के गहरे बहाव में पड़कर जीवन का अंत लाने का संकल्प किया ।

गरुड़ेश्वर के आगे जाने पर नर्मदा के किनारे पर की एक ऊँची चट्टान की धार से कुछ पीछे हटकर तेजी से दौड़कर नर्मदा के गहरे नीर में कूद पड़े ।

४. अलौकिक दर्शन

''नर्मदामैया के जल के पुनीत प्रवाह का पैर को स्पर्श हुआ । उसकी तादृश चेतना अभी तक बनी हुई है । उसका जीवन्त चित्र अब भी उपस्थित होता है । यह मृदु, कोमल, शीतल स्पर्श हुआ न हुआ वहाँ तो पानी के प्रवाह से प्रचंड चक्रवात उठा ! उस चक्रवात ने शरीर को उछालकर चट्टान से कहीं दूर ऊपर फेंक दिया । उस चक्रवात के मध्य में उस क्षण नर्मदा मैया के कोई अद्‌भुत दर्शन हुए । उस दर्शन का स्वरूप किसी स्थूल प्रकार की माता जैसा न था । वह दर्शन तो अलौकिक प्रकार के संपूर्ण आरपारदर्शक थे । उस समय इस प्रकार जिस चमत्कारिक रूप से बचे, तब से ही दिल में हुआ कि, ''By His grace, I am meant for something.'' (उनकी कृपा से, मेरा निर्माण किसी उद्देश्य के लिए सर्जित हुआ है ।)

आजकल के बौद्धिक युग में इस तथ्यपूर्ण घटना को कोई मानेगा नहीं, यह स्वाभाविक है । ऐसी वास्तविकता दूर रखने में कितनों को ही सयानापन भी न लगे, किन्तु जिस सच का अनुभव हुआ हो, उसे संसार के आगे प्रेमभाव, नम्रता से रखना भी आवश्यक लगता है । हम जो मानते हैं, वही मात्र सच है और दूसरा सच नहीं ऐसी मान्यता में एक प्रकार का जड़ मताग्रह समाया है ।

इस अनुभव की वास्तविकता सचमुच घटित हुई है । वह मात्र halucination (भ्रम) था, ऐसा जरा भी नहीं है । आज भी वह दर्शन मेरी आँखों के सामने जीवन्त है । उस दर्शन से प्रभुकृपा से मुझे प्रेरणा मिली है । उसके अलावा साहस, सहनशक्ति, दृढ़ता आदि गुण और उनकी शक्ति भी मिली है । उस दर्शन के अनुभव से जीवन की दिशा में जो अचानक स्वयंभू परिवर्तन आया है, उसे कोई छोटा-मोटा प्रसंग नहीं कहा जा सकता ।''

• • •

विभाग - ३ : जीवन-प्रवेश

१. पुनः आदेश—श्रीगणेश

बचपन से ही श्री जानकीदासजी, श्री सरयुदासजी और पूज्य श्री गोदड़िया महाराज जैसे संतो का स्पर्श प्रभाव तो था ही । हृदय भी भाव से पूर्ण था । कालोल की पाठशाला में आचार्य श्री घनश्यामभाई नटवरराय मेहता (घनुभाई) श्रीमोटा की पढ़ाई की प्रगति में सहायक हुए थे । श्रीमोटा वडोदरा में घनुभाई की मौसी के यहाँ रहते थे ।

मौसी के प्रति उनके हृदय में गहरा भाव था । उन्हें अपनी 'माँ' मानते और उनका सभी कहा हुआ भी मानते थे ।

एक दिन मिरगी का दौरा चला और उनके वडोदरावाले मकान की तीसरी मंजिल की सीढ़ी से श्रीमोटा गिर पड़े और लुढ़कते लुढ़कते आँगन में गिर पड़े । ईंटो के इस आँगन में गिरने से शरीर पर कुछ चोट आई । मिरगी के दौरे से स्वस्थ होने पर अपनी दृष्टि के सम्मुख एक दर्शन स्पष्ट हुआ । नर्मदा किनारे मिले वे साधु प्रत्यक्ष हुए और स्पष्ट कहने लगे, ''अरे ! भगवान का स्मरण करने में तुम्हारा क्या जाता है ?''

इस विरल दर्शन और सांकेतिक वाणी के मर्म इस युवा का अंतर नहीं समझ पा रहा था । साधुओं के प्रति और उनके वचनों के प्रति उनके दिल में अभी पूर्ण दृढ़ विश्वास और श्रद्धा जागी नहीं थी । भगवान का नाम लेने से रोग मिट सकता है, यह बात उनकी बुद्धि का तर्क स्वीकार नहीं कर पा रहा था । इससे विपरित, साधु तो समाज पर आर्थिक रूप से बोझ है, ऐसे विचार घर कर चुके

थे । इस कारण से साधु महाराज के आदेश का पालन करने में उनकी तत्परता नहीं थी ।

तब भी नर्मदा किनारे मिले साधु के दर्शन और उनके द्वारा दिये गये पुन: आदेश की बात उन्होंने अपनी इस 'आध्यात्मिक माँ' से कही । उन्होंने प्रेमपूर्वक कहा, ''अरे, चूनीया ! तुम तो बड़े भाग्यशाली हो । तुम भगवान का स्मरण किया करो । उठते-बैठते, चलते-फिरते, खाते-पीते, सारे ही कर्म करते हुए एकमात्र भगवान के स्मरण में तुम लग जाओ । तुम्हारा रोग अवश्य मिट जाएगा ।''

''मुझे उन दिनों उन साधु-महात्मा से मेरी इस 'माँ' में अधिक विश्वास था । उन्होंने मुझे भगवान का नामस्मरण करना समझाया फिर भी मैंने पू. गाँधीजी को पत्र लिखा । उनका प्रत्युत्तर मिला । मुझे पू. गाँधीजी में अनंत विश्वास था★ । इससे भगवान का नाम लेने को मैं प्रेरित हो सका ।''

मिरगी मिट जाए यही उत्कट इच्छा थी । मिरगी जीवन की एक निंदाजनक व्याधि थी । उसे हटाने के लिए श्रीमोटाने 'हरि:ॐ' का रटन प्रारंभ किया । नामस्मरण की उन्होंने व्यवस्थित योजना बनाई । हर रोज एक घंटा स्मरण एक सप्ताह तक करना । प्रत्येक सप्ताह स्मरण का समय बढ़ाते जाते । यह संकल्प और व्यवस्था टिकी रहे इस हेतु जिस दिन भगवान का स्मरण करना भूल जाँय, उस दिन भोजन त्याग करना निश्चित किया ।

श्रीमोटा कहते है, ''भगवान का स्मरण करना बार-बार भूल जाता । फिर से मैं याद करते हुए लेने लग जाता । इस प्रकार धीरे-

★ पू. श्रीमोटा की ध्वनिमुद्रित वाणी दि. ३०-१-१९७२ वसंतपंचमी उत्सव, वड़ोदरा (स्व. श्री रमणभाई अमीन, एलेम्बिकवाले)

धीरे मिरगी के दौरे की तीव्रता में और उसके समय में अन्तर पड़ने लगा और मात्र तीन-चार महीने में तो यह रोग जड़मूल से मिट गया ।'' (नामस्मरण से शरीर का रोग किस प्रकार मिट सकता है, इस विषय में एक जिज्ञासु ने किये प्रश्न के उत्तर में पूज्य श्रीमोटा ने स्पष्ट रूप से यह विवरण दिया है ।)

इस घटना ने जीवन में नया मार्ग खोला । ई.स. १९२३ से जीवन विकास की साधना का श्रीगणेश हुआ ।

२. गुरु पुकार और प्रसादी

'हरि:ॐ' का रटन तो शरीर के रोग को मिटाने के उद्देश्य से किया था । आवश्यकता तो रोग मिटाने की थी । किन्तु उसमें से मानवजीवन में निहित महाव्याधि की झाँकी हुई । अंत:करण पर परतें छा गईं थीं । स्वयं के रागद्वेषादि की चेतना प्राप्त हुई । शरीर को रोग में से तो मुक्ति मिली किन्तु जीवन को अवरुद्ध करनेवाली महाव्याधि को कैसे दूर किया जा सकता है ?

जिस साधन ने शरीर को रोग से मुक्त किया, उसी साधन का अभ्यास उन्होंने निरन्तर बनाये रखा । नड़ियाद में हरिजनसेवा का कामकाज करते-करते भी भजन-कीर्तन, प्रार्थना, स्मरण और आत्मनिवेदन तो होते ही जाते थे । इस प्रकार एक वर्ष बीत गया ।

एक दिन अहमदाबाद से नड़ियाद आये हुए एक मित्र ने कहा, ''चूनीभाई ! अहमदाबाद में एलिसब्रीज के किनारे एक साधु को मैंने देखा ।''

वे साधु चिल्लाते हुए कह रहे थे, ''नड़ियाद से चूनीभाई भगत को बुलाओ ।'' श्रीमोटा इस बात को मान नहीं पा रहे

थे । फिर स्वयं को प्राप्त कर्म के प्रति उनकी निष्ठा इतनी अधिक थी कि उसे छोड़कर भी वे नहीं जा सकते थे । उस समय उन्हें साधु-महात्माओं को देखने, मिलने का सामान्य कौतुक भी न था, क्योंकि पूज्य गाँधीजी प्रेरित देशसेवा का कर्म ही सर्वोच्च था ।

अभी तक हृदय में जीवन के विकास का लक्ष्य स्पष्ट जागा न था । अंतर में देश की आजादी की तमन्ना का लावा धधक रहा था । देश की मुक्ति के खातिर फना होने की पूरी तैयारी थी ।

इस दायित्व को त्यागकर नड़ियाद से अहमदाबाद जाना कैसे स्वीकार कर लेते ? फिर कोई साधु 'चूनीभाई' का नाम लेकर पुकार रहा है, वे स्वयं ही हों, ऐसा भी कैसे मान लें ? ऐसे तर्कों से कर्ममस्त रहते हुए भगवान के स्मरण में तो अविरत रूप से लगे ही रहते । उस समय अहमदाबाद, साबरमती के किनारे पड़े हुए साधुवाली बात मन में बनी ही रहती है । वह विचार उनका मन छोड़ता ही नहीं था । इसके साथ-साथ वह मित्र भी कहा ही करता है । किन्तु साधु को मिलने जाने के लिए रेल्वे किराये के पैसे नहीं हैं । वह मित्र ही उस साधु को मिलने के लिए रेलवे किराये के पैसे देता है । इसलिए श्रीमोटा हरिजन सेवक संघ से एक दिन की छुट्टी लेकर अहमदाबाद आते हैं ।

एलिसब्रिज पुल के टाऊनहोल की ओर जाती दिशा की ओर जाते हुए पुल के प्रारंभ के हिस्से में ही बायीं ओर साधुओ रह सकें ऐसी एक जगह है । वहाँ एक बंगाली मस्तराम साधु 'चूनीभाई' के नाम को पुकारते रहते हैं, यह देखकर श्रीमोटा के विस्मय का पार न रहा । यह साधु कौन होगा ? क्यों भला 'चूनीभाई' के नाम को पुकारता होगा ?

श्रीमोटा आज भी कहते हैं कि, ''सद्गुरु की सच्ची पहचान तो कभी विशेष रूप से होती ही नहीं। वह तो आगे बढ़ते हुए अंतर में अंतर से हुआ करती है। ऐसा प्राप्त हुआ अनुभव ही सच्चा अनुभव है। प्रारंभ में सद्गुरु के प्रति की भावना प्रत्यक्ष रूप से कभी-कभी उफान बनकर दिल में प्रकट हुआ करती थी।

दिल में ऐसे भाव जो जागते थे, वे इस बंगाली साधु के प्रति थे। उनका स्वीकार गुरु रूप में करने से पहले ही गुरु ने उन्हें बुलवाकर उनका स्वीकार किया। इस घटना के पीछे रही हुई विलक्षणता का स्मरण श्रीमोटा आज भी करते हैं। वे कहते हैं, ''अंतर की भूमिका हो तभी सद्गुरु सामने से आकर सहायता करते हैं।''

'चूनीभाई' के नाम की पुकार करनेवाले बंगाली साधु के पास वे चार दिन तक रहे, वहाँ क्या हुआ ?

''इन चार दिनों में उन्होंने इतना सारा खिलाया कि बात ही न पूछो। इस भोजन का वजन कम से कम पाँच किलो तो होगा। यह तो मैं कम से कम बतला रहा हूँ, जिसे कोई गप्प न माने। हर घण्टे और कितनी बार तो आधे घण्टे में भोजन की अलग-अलग व्यंजनों की थाल आया ही करते और मुझे वह खा जाने का आदेश होता था। एकदम गले तक तो आ गया हो और अब तो एक कौर भी खाया न जा सके, ऐसी स्थिति थी। ऐसा स्पष्टत: लगने पर भी खाया जाता। ऐसा दिन में कितनी ही बार होता जाता। ऐसा करने पर भी शरीर में कुछ भी विशेष नहीं हुआ था।

इसलिए बुद्धि से जाँचकर ही सद्गुरु का स्वीकार किया और उनके प्रति क्रमानुसार हृदय का प्रेमभक्तिभाव जागते-जागते और उनका अनुभव होते-होते उन्होंने ही सद्गुरु का परिचय

कराया । उनका गुरुत्व हृदय में परमशुद्ध स्वरूप में किसी परम चेतना की लक्षणात्मक दशा में अनुभव होता गया । ऐसे सद्गुरु की सेवाभावना सर्वस्व प्रेमभक्तिज्ञानभाव से समर्पित होकर जीवित हो सकती है । ऐसी आंतरिक श्रद्धा-निष्ठा जीवन में, बाद में तो प्रगट होती हुई वह ऐसी ऐसी ठोस कसौटिओं से गुजरते-गुजरते अनुभव में परिवर्तित हुई ।'' (जीवन-पुकार, पृ. १९४, १९५)

ऐसे साधु नड़ियाद अपने यहाँ पधारें ऐसी मनोमन प्रार्थना श्रीमोटा करते जा रहे थे और उनकी सूचनाओं का पालन भी तत्परता से करते जा रहे थे ।

वे बंगाली साधु थे – पूज्य बालयोगी महाराज । श्रीमोटा को नड़ियाद में हाजी मंजिल में वसंतपंचमी के दीक्षादिन के बाद विदाय देते हुए पूज्य बालयोगीजी ने रात्रि स्मशान में बिताने की सूचना दी । अभय, नम्रता, मौन और एकान्त–ये चार साधन श्रीमोटा को उनकी ओर से प्राप्त हुए ।

तब से श्रीमोटा ने स्मशान में जाकर सोना प्रारंभ किया । नींद आने तक स्मशान के भयंकर एकान्त में स्मरण की साधना का अभ्यास आरंभ किया ।

३. जीवनविकास – एकमात्र ध्येय

नर्मदा के गहरे पानी में कूदकर कृपाशक्ति से बच गये थे । उस समय का ध्येय पूज्य श्री बालयोगीजी के स्पर्श से अधिक स्पष्ट हुआ । शरीर के रोग से मुक्ति प्राप्त करने का ध्येय तो बहुत ही कम समय में पूरा हो गया था । किन्तु अब तो अन्त के अनुभव की प्रक्रिया में सक्रिय बनना था ।

''अब तो जीवन का एकमात्र ध्येय था कि प्रभु को प्राप्त करना है । जीवन को उनके लिए, उसके पीछे फना कर देना है । सद्‌गुरु की कृपा आशीर्वाद से सब कुछ मिल सकता है । ऐसी भावना की वास्तविकता स्वीकार करने में तथ्य होते हुए भी उसे पकड़े रखना कदापि उनकी कृपा से मिथ्या नहीं किया है । अर्थात् बतलाये मार्ग पर चलकर, सद्‌गुरु द्वारा निर्दिष्ट उन्हीं की कृपा से बढ़ते हुए, अब आगे कौन-सा मार्ग है, उसे भी समय आने पर सद्‌गुरु ने बतलाने के लिए कहा है ।''

जीवनविकास के मार्ग—प्रभुप्राप्ति के मार्ग में—अब निश्चित उद्देश्य से चलना प्रारंभ हुआ है । ध्येय निश्चित हुआ है—प्रभुप्राप्ति । प्राप्त कर्म तो पड़ा है—हरिजनसेवा और उस ढंग से होनेवाली कर्मसाधना से कुटुम्ब के प्रति कर्तव्यपालन और साधना के क्षेत्र में 'हरि:ॐ' का स्मरण और सद्‌गुरु के आदेश का पालन ।

४. स्मशान में रात्रिवास

श्रीमोटा की साधना में बहुत-सी विशेषताएँ हैं—उन्होंने किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति को ऐसे ही नहीं स्वीकारा । आरंभ में गुरु की आज्ञा का पालन करने में भी बहुत ही उलझनें लगती थीं क्योंकि ''दिव्य जीवन के स्वरूप की समझ प्रारंभ में उद्‌भवित नहीं हुई थीं । इससे अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प भी उठते थे । अज्ञानता के कारण पहले बहुत-सी उथल-पुथल उनके हृदय को आकुल-व्याकुल करती थी, क्योंकि आज्ञा के हार्द को पूरी तरह पहचान सकने जितनी समझ प्रकट न हुई थी ।''

तथापि आज्ञा का पालन होते ही सब कुछ अपने आप समझ में आने लगता था । मार्ग धीरे-धीरे स्पष्ट हो रहा था । फलत: श्रीमोटा की साधना में सद्गुरु के आदेश के पालन की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण रही, ऐसा कहा जा सकता है ।

पूज्य बालयोगीजी को मिलने के बाद स्मरण करने का उद्देश्य स्पष्ट हो गया । ध्येय प्राप्ति ही मात्र लक्ष्य था । जीवन का ध्येय स्पष्ट होते ही साधना के उद्देश्य के प्रति जागरूक हुए ।

श्रीमोटा की साधना में मुख्य अंग थे—अभय, नम्रता, मौन और एकान्त । मौन—एकान्त बहिर्मुखता घटाता है तथा अभय एवं नम्रता अंतर्मुखता लाती है । श्रीमोटा पूरे दिन काम करने के बाद भी जोर-जोर से भगवान का स्मरण करने में लगे रहते थे । दिन के अधिकतम समय में मौन सेवन करते थे । आवश्यकता से अधिक बोलते ही नहीं थे । चर्चा या वादविवाद में रुचि न लेते । उनके बहुत से साथी उन्हें 'कूपमंडूप' भी कहते । कोई उन्हें जड़ गिनता किन्तु श्रीमोटा का ध्येय स्पष्ट होने से उनके जीवन की यमुना की गति बदल चुकी थी । जीवन का आंतरिक प्रवाह, विचार, व्यवहार और वृत्तिओं की प्रभु के ओर की गति दृष्टि में आये ही कैसे ?

''नड़ियाद में जितने दिन तक रहे, उन सभी दिनों गाँव से दूर एकान्त में शयन करते रहे । शैय्या तो 'भूमितल' था । प्रारंभ में तो पीने का पानी भी प्राप्त नहीं हो सकता था । स्मशान में लकड़ियों की रखवाली के लिए एक बुढ़िया माँ रहती थीं । मेरे लिए वे नित्य छोटी-सी मटकी में पानी भरकर रखती थीं । सोने की जगह भी बुहार कर रखती थीं । कड़कती ठण्ड पड़ती हो या मूशलाधार बरसात हो, तब भी वह कार्यक्रम सदा चलता ही रहता । कठिनाई होने पर भी कठिनाई को उस रूप में नहीं माना ।''

क्योंकि मन में एक प्रकार का निश्चय दृढ़ हो चुका था । इसलिए कठिनाई होने पर भी मन उसे कठिनाई के रूप में स्वीकारने के लिए तैयार न था ।

श्रीमोटा बहुतबार नड़ियाद में बोकड़ की बावली जैसी भयंकर जगह पर जाकर नींद न आये वहाँ तक स्मरणभाव में निरंतरता प्राप्त करने हेतु अभ्यास करते रहते । वहाँ लोग डराते अथवा खून की धमकी भी देते थे । रात को चोर लोग भी वहाँ आते थे । इस युवक को देखकर कभी उसे मारने का भी विचार करते । साधना के इस आरंभ के समय अंतर्गत मन चोरों की बातें सुनता पर इससे उन्होंने भयवश कभी एकान्त नहीं त्यागा ।

४. क्षुरस्य धारा

श्रीमोटा ने प्रभुपद की प्राप्ति हेतु साधना का मार्ग अपनाया । दिन में तो संसार के झंझट और अवरोध तो थे ही किन्तु ये सारे अवरोध गौण थे ।

स्मरण करते-करते सद्गुरु की कृपा से अंतर्मुखता आते-आते मन के संकल्प-विकल्प और वायु से भी वेगवान मन के विचार, तरंग, कल्पनाओं की सनसनाहट का स्वरूप प्रगट होने लगा । श्रीमोटा के मन में ध्येय के प्रति गतिशील रहने का संकल्प तो हो चुका था पर विकल्पों की क्रमिकता उन संकल्पों को शिथिल करती थी । उनके सामने ध्येय के प्रति निश्चयात्मकता अपना संग्राम कर रही थी ।

इस संग्राम की लीला प्रेमभक्तियुक्त थी । श्रीमोटा की साधना का साधन—नामस्मरण—प्रेमभक्तियुक्त और ध्येय के उद्देश्य के प्रति

सजगता थी । मन के अंधाधुंध चित्र-विचित्र तुक्कों के स्वरूप को देखते हुए श्रीमोटा ने मन को सज्ज करने का आरंभ किया । साधना को सानुकूल बनाने के लिए मंथन प्रारंभ किया ।

इसमें से 'मन ने' गुजराती पुस्तक की उत्पत्ति हुई । 'मन ने' पुस्तिका में उन्होंने मन को साधना मार्ग के लिए सानुकूल होने के लिए बहुत विनती की है । विचार को जहाँ महाकठिनाई से एक जगह ध्येय के उद्देश्य से केन्द्रित करते हैं, वहाँ तो यह मन धोका देकर वापिस कहीं का कहीं भटकने चला जाता है । मन के अनेक साथियों में से तरंग, तुक्का, दलील, तर्क तथा कल्पनाएँ और 'उत्तमोत्तम बुद्धिशाली मेरे जैसा न कोई है ?' ऐसा ठसाकर भ्रम डाल देता है । किन्तु मेरा संकल्प प्रभुकृपा से दृढ़ था । मैं मन को कहता, ''तुम मुझे शायद छोड़ दोगे किन्तु मैं तुम्हें कैसे छोड़ सकता हूँ ? तुम्हें हर तरह से मनाकर अपने साथ ही रखूँगा और एकाग्र चित्त से मैं एकाग्र करके ही अंत में तुम्हें पूरा डूबाऊँगा । मुझे भी प्रभु ने हाथ-पैर दिये हैं । तुम कहाँ तक टेढ़े-मेढ़े रहोगे इसे मैं देखता हूँ !'' दिल में यदि भावना होती हैं तो 'क्या संभव नहीं है ?' मेरे हृदय में ऐसा दृढ़ विश्वास हो चुका था ।

इतना ही नहीं, ''मैं जिस ध्येय को प्राप्त करना चाहता था, उस ध्येय की भावना आठों पहर सन्मुख रह सके तो उत्तम, ऐसी भावना सतत बनी रहती । प्रार्थना भी हो सके, किन-किन साधनों द्वारा वह तत्त्व प्राप्त हो सकेगा और कैसा हो सकेगा उसकी भी भावना दिल में बनी रहे और उसकी फिर प्रार्थना चलती रहे और उस प्रार्थना में मुझे क्या गाना है वह भी आ जाय, इस प्रकार की एक लगातार प्राणवान भावना नित्य होती रहती । ऐसे मेरे हृदय की भावना के दर्पण जैसी धारणा 'तेरे चरणों' में प्रभुकृपा से व्यक्त हुई

है । इसमें उसकी प्रार्थना का भाव है, वह कहाँ-कहाँ और कैसे-कैसे साधनों से प्राप्त हो सकता है, उसका भी विवरण हैं । चेतना में निष्ठा के साथ, विकास होता जाता और उसके प्रसाद से अवग्रहीत जीवन कैसा हो सकता है, उसकी वास्तविकता भी उसमें है । अंत में, मुझे उससे क्या माँगना है, उसकी भी प्रार्थना है । प्रभुकृपा से मुझमें प्रार्थना इस प्रकार की जाग्रत हुई कि जिससे मेरे जीवन के ध्येय की सन्मुखता सदाकाल टिकी रहती ।''

(जीवनदर्शन, पृ. १८१, १८२)

साधना का मार्ग तो तलवार की धार पर चलने जैसा कठिन है । अभी तो उसकी नोक का ही स्पर्श हुआ था । मन के विकार और हृदय की वृत्तिओं का परिचय हुआ था । और, ये सभी अंतर में बहुत सालते थे । इन अवरोधों को सानुकूल बनाना था । संसार के जीवन में, श्रीमोटा ने साधक के लिए संसार की आवश्यकता का स्वीकार किया है । साधना की प्रगति की कसौटी ही संसार में होती रहती है । इस दृष्टि से 'संसार' का महत्त्व है ।

इस प्रकार श्रीमोटा साधना के अभ्यास में रात-दिन लगे रहते हैं । उनकी साधना की विशेषता यह है—ध्येय की सन्मुखता, उद्देश्य के प्रति सजगता और उसके लिए ही साधनों का अभ्यास । साधनों में सर्वप्रथम आता है—स्मरण, प्रार्थना, भजन-कीर्तन, आत्मनिवेदन और समर्पण ।

स्मरण में प्रारंभ में ऊब पैदा होती थी, किन्तु प्रार्थना की सहायता से वह दूर होता जाता । मन के विकारों का उफान और वृत्तिओं का तूफान आकुल-व्याकुल करते । जीवन की गहराई में छिपे दोष सर्पदंश की वेदना की तरह तीव्र रूप से चुंभते । तब प्रार्थना का आश्रय लिया जाता था । उन दोषों के दंश के कारण

प्रार्थना आर्तभाव से होती और उसका शमन करने हेतु आर्द्र भाव भी उस प्रार्थना में मिल जाता था । प्रार्थना से जगनेवाला भाव दुबारा स्मरण की साधना के उपयोग में लिया जाता । इस प्रकार स्मरण और प्रार्थना जैसे साधनों के समन्वय से साधना में गति आ जाती । मन साधना में एकाग्र हो उस स्थिति में पहुँचने में तो अनेक प्रकार के संघर्ष और यातनाएँ प्रेमभक्ति के कारण सहन कीं । इससे संसार की कठिनाइयाँ या आंतरिक मंथन तपश्चर्या के रूप में जीवन को तेजस्वी बनाते गये ।

दिन के दौरान गाये जाते भजन-कीर्तन और आत्म-निवेदन द्वारा भी ध्येय की सजगता बनी रहती और मन भी गढ़ता जाता ।

६. जीवनप्रवेश—वसंतपंचमी

रात्रि में स्मशानवास और दिन में हरिजनसेवा निमित्त संसारवास करते-करते श्रीमोटा की साधना चलती रही । किन्तु उसमें वेग नहीं आया । मनादि के कारणों का शोधन तीव्र नहीं हो पाता ।

अहमदाबाद, साबरमती किनारे मिले पूज्य बालयोगीजी का स्मरण होता है । उनकी प्रभावक शक्ति के प्रति भाव जागते है । उनके पास जाकर चार दिन रहे उसका स्मरण होता है । वहाँ से विदा होते समय की प्रार्थना भी याद आती है । उस समय तो मनोमन कहा, 'आप नड़ियाद पधारें तो कुछ लाभ प्राप्ति हो पाएगी ।' किन्तु उस समय 'लाभ-प्राप्ति' यानी किसकी प्राप्ति उसका खयाल स्पष्ट न था ।

एक बार ''मुझे पंचमहाल के दाहोद तालुका के मीराखेडी में अन्त्यज सेवा मंडल की कार्यवाहक सभा में उपस्थित होना

था । उस दिन सुबह फास्ट ट्रेन में दाहोद जाने के लिए टिकट भी ली और जैसे ही अंदर जाने को हुआ, वहीं मेरी दृष्टि अचानक सद्गुरु पर पड़ी । वे प्लेटफोर्म के बाहर एक कोने में शांतरूप से खड़े थे । जैसे ही दृष्टि पड़ी कि तुरन्त ही मैं वापिस लौटा और उन्हें दंडवत् प्रणाम प्रेमभक्ति से किया और खुश हुआ । उन्होंने आदेश दिया कि रेलवे की टिकट वापिस लौटा दो ।''

एक तरफ कर्तव्य भावना में निष्ठा रखने की वृत्ति और दूसरी ओर गुरु के आदेश पालन की तत्परता । दोनों के बीच संग्राम चला । कर्तव्यनिष्ठा का आग्रह अधिक जोर देता था किन्तु सद्गुरु का आदेश ही विजयी हुआ । श्रीमोटा आज भी कहते हैं ''किस प्रकार के बल के प्रभाव से मैंने इस टिकट को लौटाया, यह आज भी मैं नहीं समझ पाया ।'' गुरुकृपा की शक्ति का यह प्रभाव था ।

पूज्य श्री बालयोगीजी श्रीमोटा के घर पधारे । वे 'मस्ती में क्या कूदमकूद करते ! और इधर-उधर नाचते-झूमते !' तब हम नड़ियाद नरखी पोल में रहते थे । वहाँ ड्योढ़ी में एक छोटी-सी मड़ई थी । वहाँ उन्हें बिठाया गया । उन्होंने मुझे कहा, ''मैं तुम्हें साधना में दीक्षित करने आया हूँ । उसके लिए एक बंगला चाहिए । इतना ही नहीं, किन्तु वह भी एकान्त स्थल पर होना चाहिए । उसके पास एक जलाशय भी होना चाहिए । ऐसा स्थान प्राप्तकर तुम तुरन्त वापिस लौटो ।''

''ऐसा स्थान किस तरह से प्राप्त हो सकता है ? इसकी संभावना मेरे लिए न थी और ना ही कोई सूझ थी । इतने में तो मेरा काम पर जाने का समय हो गया । मैं उनसे प्रार्थना कर संमति प्राप्त की । मेरी माँ को उनकी देखभाल का काम सौंपकर मैं मरीडा के बाहर पाठशाला का काम करने निकला ।''

रास्ते में वहोरवाड में एक हाजी श्री कासमसाहब को श्रीमोटा प्रतिदिन सलाम करके 'अस्सलाम् अलयकुम्' कहते थे। किन्तु आज मन सद्गुरु के आदेश में डूबा होने से प्रतिदिन का नियम भंग हो गया। श्री कासमसाहब को भी भगत के इस व्यवहार से आश्चर्य हुआ। श्रीमोटा को तुरन्त ही याद आया और उन्होंने सलाम किया तथा स्वयं क्यों भूल गये थे उसकी भी जानकारी दी।

तब कासमसाहबने कहा, ''अरे भगत ! तुम व्यग्र क्यों हो रहे हो ? हमारा एक बड़ा बंगला डभाण के रास्ते पर है। वह एकान्त जगह पर है और उसके पास ही राम तलावडी है। लो चाँबी। जाओ, तुम्हारे ओलिया को उस बंगले में रख लेना !''

''इतना बड़ा मकान, एकान्त जगह और जलाशय—उनके कहे अनुसार ही प्राप्त हो गया था। इससे मुझे इतना आनंद प्राप्त हुआ, जिसे मैं कैसे समझाऊँ और कैसे उसका वर्णन करूँ ?''

मुझे दौड़कर गुरु महाराज के पैरों में पड़ जाने का मन हुआ। परन्तु उस समय कर्तव्यबोध सबल था। इसलिए उसमें जगी हुई भावना की बाढ़ में बहकर जाने के बदले प्राप्त कर्म में ही प्रयाण करने का रखा। काम से निपटकर घर आने के बाद मैंने उन्हें गदगद भाव से बतलाया। वहाँ उन्हें जाकर उस मकान में ठहराया और वहाँ उन्होंने मुझे दीक्षित किया।

सारा ही समय पूज्य श्री बालयोगीजी की सेवा में रहता। साथ ही अपने कर्तव्य को भी निभाते जाता। पूज्य बालयोगीजी ने श्रीमोटा के जीवनविकास के साधना मार्ग में प्रगति हेतु प्रभु की कृपा शक्ति दी। इस कृपा के सामर्थ्य की प्रक्रिया गूढ़ होने से उनके प्रागट्य की आवश्यकता भी न थी। एक दिन पूज्य बालयोगीजी ने श्रीमोटा को अपने पास पद्मासन में विठाकर कहा, ''आंखे बंद करो और दृष्टि को भृकुटि के बीच स्थिर करो। विचार बिलुकुल नहीं आने चाहिए।''

श्रीमोटा ने सूचनानुसार करने का प्रयत्न किया। फिर पूज्य श्री बालयोगीजी ने पूछा, ''क्यों अभी भी विचार आते हैं ?''

''हाँ जी, विचार तो आते हैं।''

''फिर से प्रयत्न करो।''

श्रीमोटा ने बहुत ही प्रयत्न किया। किन्तु नहीं हो पाया। पूज्य बालयोगीजी गरजे, ''अभी भी विचार आते हैं ?''

श्रीमोटा ने ''हाँ'' कहा। वहाँ ही पास पड़ा एक वजनदार कीला उठाकर उन्होंने श्रीमोटा के कपाल में दो भृकुटि के बीच में दे मारा और श्रीमोटा मूर्छित हो गये।

और जब श्रीमोटा को चेतना आयी तब पूज्य बालयोगीजीने पूछा, ''कितना समय संकल्प-विकल्प रहित बीता ?''

''दो-तीन मिनट।''

''नहीं।''

''तो दसेक मिनट हुई होगी।''

''नहीं।''

''अधिक से अधिक आधा घण्टा हो !''

''नहीं, ठीक तीन दिन हुए।''

श्रीमोटा तीन दिन तक स्थान-काल के चेतना भूलकर मन की संकल्प-विकल्प रहित पद्मासन की स्थिति में रहे। मन की ऐसी स्थिति का इतना लम्बा काल कुछ ही मिनटों में बीता हुआ लगा। यह अनुभव विरल था।

साधनारंभ होने के बाद बहुत संघर्ष और प्रार्थना के बाद उचित और अनुकूल भूमिका के लिए पूज्य बालयोगीजी द्वारा प्रभुकृपा की इस परम शक्ति का अवतरण पूज्य श्रीमोटा में संभव हो पाया और स्थिर होता गया।

श्रीमोटा को दीक्षित किया, वह दिन था वसंत पंचमी ई.स. १९२३ । प्रकृति भी इस ऋतु में नवपल्लवित होती है और अभिनव भाव मानव के हृदय में जागते हैं । उस दिन का सुयोग श्रीमोटा के जीवन को नवपल्लवित करने के लिए कैसे सहायभूत हुआ ! ''वे मेरे यहाँ नड़ियाद पधारे । यह उनकी अपार करुणा का प्रत्यक्ष जीता जागता दृष्टांत है । ऐसी उनकी सहज करुणा का प्रताप मैं कभी भी भूल नहीं सकता ।''

●●●

विभाग - ४ : जीवन-उत्क्रांति

१. समर्थ सद्‌गुरु की अकल्पनीय कला

श्रीमोटा को साधना में दीक्षित कर पूज्य बालयोगीजी ने कहा, ''सांईखेड़ा में धूणीवाले दादा हैं । उनके द्वारा प्रेरित हो मैं तुम्हारे पास आया हूँ और साधना में तुम्हें दीक्षित किया । इसलिए तुम उनके पास जाकर आशीर्वाद ले आओ ।''

यह तो गुरु का आदेश ! श्रीमोटा तैयार हो गये । पूज्य दादाजी–पूज्य केशवानंदजी अपने यहाँ ही ठहर जाने का आदेश देंगे । इससे स्वयं अपनी 'नौका के सारे ही पालों से मुक्त हो जाने का निश्चित किया ।' और संघ से त्यागपत्र देकर, ई.स. १९२४ में साईखेड़ा गये और वहाँ की धर्मशाला में निवास किया ।

दो मन जितनी लकड़ियों की धूनी धधक रही है । पूज्य श्री दादाजी की तैरती आँखों में किस प्रकार के भाव हैं, यह परखना कठिन पड़े ऐसा है । शरीर पूरा निर्वस्त्र है । चमकता शरीर आंक के फूलों के हार में शोभित है । पास में नारियल भी पड़े हैं और कंधे के आधार पर एक बड़ा डंडा है ।

श्रीमोटा नहा-धोकर उनकी ओर गये तब कितने ही लोग पूज्य दादा से डरकर दूर भाग रहे थे । कितनों ने चिल्लाकर श्रीमोटा से कहा, ''हट जाओ ! हट जाओ ! दादा तुम्हारा सिर फोड़ डालेंगे ।'' किन्तु पूज्य बालयोगीजी का आदेश ही हृदय में जीता जागता था । वे तो पूज्य दादाजी के पास पहुँच गये और उनके पैरों में वंदन किया ।

श्रीमोटा अपने जीवनविकास के प्रणेता, दिव्य जीवन के लिए सर्वस्व सद्गुरु के दर्शनार्थ आये हैं । जिन्होंने परस्पर कभी किसी को नहीं देखा है, एक दूसरे को कभी स्वप्न में भी नहीं मिले हैं । तब भी पूज्य बालयोगीजी को सामने से नड़ियाद भेजा, नवजीवन के मार्ग में दीक्षा दिलायी है, वे परम सद्गुरु मात्र देखने से ही पहचाने जाएँ इतना सरल न था ।

वे तो '**ब्रह्मानंदम् केवलम् ज्ञानमूर्तिम्**' जैसा अगम्य रूप धारित कर बिराजमान थे ।

श्रीमोटा लिखते हैं, ''मैं तो प्रतिदिन उनकी बैठक से पाँच-सात फूट दूर रहता । दादा यों तो यदा कदा बोलते और कितनी ही बार तो बीभत्स भी बोलते । उनके बोलने में किसी भी प्रकार की एकसूत्रता न मिलती । कुछ ठौर ठिकाना भी नहीं होता । इससे मेरे मन में एक प्रकार की घृणावृत्ति भी जाग गयी थी । वहाँ से निकलकर नड़ियाद लौटने का मन भी कर लिया ।

परन्तु तत्क्षण दूसरा विचार उसी पल ऐसा आया कि ये दादा समर्थ पूज्य बालयोगीजी महाराज के गुरु हैं । पूज्य बालयोगी महाराज की भावलीला का तथा उनमें कोई दिव्य गूढ़ शक्ति प्रत्यक्ष थी, उसका मुझे अनुभव प्रत्यक्ष हो चुका था । इसलिए मुझे लगा कि ऐसे समर्थ बालयोगी के जो गुरु हैं, उन्हें तो और भी समर्थ होना चाहिए ! इसलिए उनके इस प्रकार बोलने के पीछे भी कुछ रहस्य होना ही चाहिए । परन्तु उसकी परख कैसे होगी ?

ऐसा जहाँ मन में हुआ वहीं दादाजी बोले । वे जब बोलते तब दो-चार गालियाँ तो देते ही थे और कभी-कभी जोर से मार भी देते, इसलिए हमें तो गालियों का प्रसाद तो मिला । वे बोले, ''मैं बोलूँ तब मेरे सामने खड़े समूह को लोगों के चेहरों पर जो

भी अंतर होता है उसका निरीक्षण कर और उन मनुष्यों को याद रखकर उनके पीछे जाकर पूछ !''

श्रीमोटा ने प्रयोग किया और उनके हृदय में दृढ़ हुआ कि पूज्य दादाजी अंतर्यामी हैं । सभी का सब कुछ वे जान सकते हैं और जानते हैं । श्रीमोटा को अपने इन सद्गुरु के विषय में नकारात्मक विचार नहीं आये थे किन्तु बुद्धिजीवी युवा को आंतरिक प्रतीति करनी थी इसलिए ऐसा प्रश्न जागा था ।

श्रीमोटा जितने समय सांईखेडा रहे उतने समय अनेक प्रकार की अजीब घटनाएँ घटीं । उनके आधार पर तथा अपने हृदय में हुई अनुभूति से श्रद्धाबल की प्राप्ति हुई । पूज्य दादाजी के पास राजा से लेकर रंक, ज्ञानी-अज्ञानी, पापी-पुण्यशाली सभी आते और सभी अपनी कक्षानुसार प्रसादी प्राप्त करते थे ।

श्रीमोटा ने ऐसे सद्गुरु के आशीर्वाद प्राप्त किये । पूज्य दादाजीने उन्हें कहा, ''तुम अपना काम संसार में रहकर करते हो । तुम्हें यहाँ रहने की आवश्यकता नहीं हैं । कठिनाई के समय तुम बुलाओगे तब मैं उपस्थित हो जाऊँगा ।''

श्रीमोटा सद्गुरु के ऐसे आशीर्वचनों के साथ वापिस लौटे । सद्गुरु का सांनिध्य प्राप्त किया । अभय वचन प्राप्त किये और उनकी साधना में एक अपूर्व वेग आया ।

छब्बीस वर्षीया इस युवा में रही शक्ति, देशप्रेम का उन्माद और स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए धधकती तमन्ना तथा प्राणन्योछावर कर देने की उत्कट तत्परता, प्रभुपद की प्राप्ति हेतु लौट आये । श्रीमोटा के समर्थ गुरु महाराज ने इस युवक में एक अपूर्व वेग सचेतन किया । जीवन की यमुना के नीर की गति को पलट ड़ाली ।

१९२४ के वर्ष में श्रीमोटा की साधना का आंतरिक वेग कितना तेजी से बढ़ा होगा उसकी जानकरी कैसे प्राप्त कर सकते हैं ?

२. हृदय-संबंध

श्रीमोटा सद्गुरु श्रीकेशवानंदजी के साथ हृदय के गाढ़ संबंध स्थापन हेतु साधनारत होते हैं ।

पुन: नड़ियाद लौटकर दुबारा हरिजनसेवा के कार्य में लग जाते हैं । दिल में अपूर्व मस्ती, कर्म में सावधानी, उद्यम, सजगता और एकाग्रता का लय बढ़ता ही जाता है । उसका वेग प्रबल होता जाता है । यह सब प्रभु का कर्म है, उसी प्रभु को समर्पित है । भक्तिभाव की दृढ़ता और निष्ठा से प्राप्त कर्म द्वारा प्रतिष्ठा होती है । कर्म करते-करते भी श्रीमोटा की हरि के प्रति की भावना प्राणवान बनी रहती । इस प्रकार वे अभ्यस्त हो गये थे ।

रात को स्मशान में जाकर साधना का अभ्यास पक्का किया था, परन्तु घोर अंधकारभरी रात्रि में अंतर में भी अंधकार के अनेक पटल प्रतीत होते हैं । मन-चित्र के एक के बाद एक स्तरों में निहित, विचारसृष्टि या वृत्तिसृष्टि कैसे खुलती होगी ।

ऐसे द्वन्द्व के तीव्र क्षणों में सद्गुरु के अलावा कौन साथ देगा ? श्रीमोटा प्रार्थना करते हैं, ''हे प्रभु ! यदि तुम मेरी कोई देखभाल न रखोगे तो मैं भटक जाऊँगा । मेरे प्रति हे प्रभु ! थोड़ी कृपादृष्टि रखें । मैं थोड़ा भी टेढ़ा जाऊँ तो तुम मेरा मार्गदर्शन करें ।''

''हे केशव ! तुम यदि करुणा करोगे तो ही यह अनाथ दीन सनाथ बन पाएगा । इसलिए तुम्हारा वरद हाथ मेरे सिर पर रखें कि जिससे मैं सागर पार कर सकूँ । हे चेतन, मुझमें प्राण फूँके !''

विघ्न, अवरोध आया ही करते हैं । किन्तु समर्थ की छाह मिली है । श्रीमोटा का ध्येय के प्रति संकल्प दृढ़ हुआ है । प्रभु के अवतरण की योग्य भूमिका तैयार करने पर ही चैन से बैठने की अनन्य तत्परता है ।

''प्रभु ! तुम्हारे इस मंदिर को अच्छा-स्वच्छ रखने के लिए मैं अत्यधिक संघर्ष कर रहा हूँ । मन के विकार, प्राण की वृत्तिओं को तुम्हारे चरणों में समर्पित करना है । इससे कहीं भी कचरा न रहे, इसके लिए मैं हमेशा यत्न करता ही रहता हूँ । तब भी मन को रुचिप्रद लगे ऐसा काम नहीं हो पा रहा है । तुम्हारे रहने लायक उसे पूरी तरह योग्य कैसे बनाऊँ ?''

''हे प्रभु ! तुम मेरे इस मन को मंत्रमुग्ध कर दो ! जिससे कहीं भटके नहीं और एक जगह स्थिर रहे । प्रभु ! मैं मात्र इतना ही माँगता हूँ । इतना होगा तो इस दिन का भाग्य फलेगा और सुंदर भी दिखेगा !''

स्वयं इस साधना के लिए यत्न कभी मंद न हो इसलिए भी प्रभु को प्रार्थना करनी है । हृदय से हृदय की प्रार्थना द्वारा, निवेदन द्वारा, सद्गुरु के साथ हृदय का संबंध बंधता है और दृढ़ होता है ।

सद्गुरु के प्रति भक्तिभावपूर्ण निवेदन हो, जो भी साधना हो और जो कुछ भी दृढ़ता अनुभव हो उसका समर्पण हो सके तथा स्तुति और कीर्तन द्वारा अंतर में भावोर्मि को छलका सके । उस भावोर्मि का उपयोग पुन: स्मरण में हो और वह सभी दृढ़ और प्रतिष्ठित होकर अंतर में सक्रिय बनी रहे ।

ऐसे कई समन्वय और उपयोग कला से श्रीमोटा साधना करते-करते विचार और वृत्तिओं पर से स्वामित्व की दिशा में पालन करने लग गये ।

३. मगरमच्छ

पूज्य बालयोगीजी श्रीमोटा के पास नड़ियाद तीन बार पधारे । पहली बार आकर दीक्षित किया । दूसरी बार हरि:ॐ आश्रमवाले स्थान पर अपनी प्रत्यक्ष देखरेख में श्रीमोटा को साधना करायी । पेड़ पर चढ़कर वहाँ सारी रात खड़े श्रीमोटा ने साधना-अभ्यास किया और तीसरी बार पधारे तब उन्होंने श्रीमोटा से कहा, 'मुझे मगरमच्छ बतलाओं ।'

श्रीमोटा को बहुत आश्चर्य हुआ । यहाँ मगरमच्छ कहाँ से लाये? फिर सोचा कि गुरु महाराज को डाकोर ले जाकर गोमती में कछुएँ दिखा लाऊँ ।

ऐसा सोचकर सद्गुरु को वे डाकोर ले गये । डाकोर के गोमतीजी में दिखाकर बतलाया, ''प्रभु ! आप कहते हैं, वे यही मगरमच्छ ।''

गुरु महाराज तो क्रोधित हो गये और श्रीमोटा को कहा, ''साला, बुद्धु जैसा है ।'' फिर एक मैला-सा अलमस्त फकीर की ओर ऊँगली दिखलाकर कहा, ''देखा, वह रहा मगरमच्छ ।''

तुरन्त ही दौड़कर श्रीमोटा को लेकर उसके पास गये । उस फकीर की आँखों में कोई अनोखे प्रकार की मस्ती थी । वे दोनों जब कुछ भी समझ में न आये इस ढंग की बात कर रहे थे ।

''क्यों, कहाँ रहते हो ?''

तो वह बोला, ''आकाश में'' ऐसी कुछ बातें हुई । किन्तु श्रीमोटा तो प्रार्थना करते खड़े रहे । फिर पूज्य बालयोगीजी ने कहा, ''जाओ, खाना लेकर आओ ।''

श्रीमोटा के पास ऐसी खास रकम न थी किन्तु कुछ पकौड़े खरीद कर लाये । वे दोनों पकौड़े खाने लगे । श्रीमोटा के सामने देखकर पूज्य बालयोगीजीने कहा, ''तुम्हें नहीं देंगे....'' ऐसा कहकर हँसते थे ।

इसके बाद श्रीमोटा की पहचान उस फकीर से करवायी और कहा, ''यह लड़का प्रभु के पावनकारी पंथ पर है । अब मैं यहाँ से बहुत दूर जाता हूँ । इसे साधना मार्ग में कठिनाई हो और तुम्हारे पास आये तो उसे रास्ता दिखलाना ।''

इसके बाद उन अवधूत फकीर के पास से श्रीमोटा ने यथासमय मार्गदर्शन भी लिया ।

४. मातृ आज्ञा - श्रीआज्ञा

श्रीमोटा को सांसारिक वृत्तियों से भी संग्राम करना पड़ा था । किन्तु उनकी विशेषता यह थी कि वे सभी के प्रति ऊष्मापूर्णभाव रखते थे किन्तु किसी की भी साधना विरोधी सांसारिक वृत्ति का अनुमोदन नहीं करते थे, प्रेमपूर्वक टाल देते थे ।

कुटुम्ब में सभी के प्रति तथा अन्य अनेक कार्य-साथिओं के प्रति भी दिल का गहरा भाव रखते और सभी का काम उत्साह से करते । नम्रता की शिक्षा श्रीमोटा ने संसार से ही ली थी ।

नित्य रात को स्मशान में सोने जाते, तब और लौटते हुए स्वरचित भजन या स्तवन गाते-गाते जाते । नाचते और कूदते जाते । कितने ही मज़ाक भी उड़ाते । लड़के कंकड़ भी मारते, ऐसे क्षण में भी अपनी नम्रता बनाये रखते और वे प्रभु भक्ति की मस्ती में उछलते - कूदते ही रहते । प्रात:काल स्मशान से लौटते तब

ममतामयी माँ को देखते ही उससे लिपट पड़ते । बहुत प्यार करते । माँ की गोद में जाकर सो जाते ! उनकी माँ तो प्यार से गाली देते हुए बोलती, ''मरा कहीं का ! सत्यानाशी, भैंसा जैसा हो गया है, तब भी मेरे साथ सो जाता है !'' तब श्रीमोटा माँ से अधिक भाव से लिपटते ।

श्रीमोटा की माँ सूरजबा को तो अपना बेटा स्मशान में सोये और देशसेवा का व्रत लेकर सामने से गरीबी अपना ले यह कैसे पसंद आता ? किन्तु साधना की दिशा के विषय में तो माँ की जीवदशा की ऐसी वृत्ति के सामने जरा भी नहीं झुके ।

श्रीप्रभुकृपा से जीवन में आदर्श की सभानता तो जीती-जागती थी । किन्तु उसके पहले ही मेरी माँ और बड़े भाई ने मिलकर मेरा विवाह कर दिया था । उसमें मेरी संमति लेने की कोई आवश्यकता नहीं ऐसा उनका मानना था । मैंने स्वयं तो दोनों को कह दिया था कि मुझे तो जीवन को इस प्रकार से दिशा देनी है । उनके एक आदर्श की झाँकी धुँधले-धुँधले भी प्रभुकृपा से मुझे हुई है । उसे साकार करने के पीछे जीवन को न्योछावर करने की एकमात्र अब लालसा है और उसके साथ इस प्रकार हुए विवाह की सुसंगतता कभी भी सानुकूल नहीं हो सकती !

तब भी उन्होंने इस विषय में लेशमात्र ध्यान न दिया और इस प्रकार इस वास्तविकता को भूलते गये । मैं तो मानो इस हकीकत को पूरी तरह से ही भूल गया था । मेरे मन में उस विषय में कभी कोई विचार स्फुरित ही नहीं हुआ । सन् १९२६ में जब मेरी माँ के पास शादी लेने की बात आयी तब मुझे उसने अवश्य पूछा था, किन्तु तब भी मैंने तो मना ही किया था । मेरी माँ बेचारी व्यग्र रहती थी सही, परन्तु जब उन पर भारी दबाव आया तब वह

मुझ पर बहुत ही चिढ़ी थी और उन्होंने मुझसे कहा, ''तुम्हें पालने के लिए इस माँ ने दो-दो मन अनाज की पिसाई, कुटाई की और कितनी मेहनत कर बड़ा किया । ऐसी माँ का वचन नहीं पाल सकते तो तुम अपने गुरु महाराज के वचन का कैसे पालन करोगे ? इससे पहले भी बहुत से भक्त हो गये, वे भी विवाहित थे । वे लोग तुम्हारी तरह ढोंग नहीं करते थे । मैं जानती हूँ कि तुम भगवान के भजन किया करते हो और घर में भी नहीं सोते । शरीर बीमार हो तब भी तुम नित्य रात को गाँव के बाहर कहीं भी सो जाते हो । ये सब ठीक है परन्तु हमें तो संसार में रहना है और तुम्हारे और भी भाई हैं । यदि तुम शादी से इन्कार कर दोगे तो हमारे कुटुम्ब की तो इज्जत चली जाएगी । ऐसा होगा तो बाकी के भाइओं का क्या होगा ? इसलिए तुम्हें शादी तो करनी ही पड़ेगी ।'' ऐसा कहकर मेरी माँ ने बहुत रोना-धोना किया और वह मुझे तब भी सही लगा था । परन्तु इससे विशेष तो मेरी माँ का वाक्यबाण, 'तुम्हें पालने-पोसने के लिए तुम्हारी माँ ने दो-दो मन अनाज की कुटाई-पिसाई की । ऐसी माँ का वचन तुम पाल नहीं सकते तो तुम्हारे गुरु का वचन तुम क्या पालोगे ?' यह वाक्य मेरे दिल में तीर की तरह आरपार बैठ गया और मैं शादी करने के लिए तैयार हो गया ।

शादी करने की तत्परता दिल से बतायी तो सही । जीवन के ध्येय को साकार करने की तमन्ना के भाव में भी नित्यक्रम की साधना के कार्यक्रम में जरा भी फर्क पड़ता न था अथवा उस घटना से मन में किसी भी प्रकार की शंका-कुशंका को स्थान न मिला था । मात्र ऐसा हुआ था कि जो विवाह होनेवाला ही है उसमें मेरे दिल की इच्छा तो है ही नहीं । यदि वह अपने आप आये

तो भले ही आये और ऐसे प्रसंगों से ही दिल के आदर्श की भावना की सच्चाई की सचमुच कसौटी होनेवाली है, तब अपना यह 'मनवा' कैसे टिकता है, कैसे ढलता है, वह हमें भी जानने अनुभव करने को मिलेगा । यदि दिल के आदर्श के प्रति पक्का निश्चय, पक्का दृढ़ विश्वास और किसी भी मूल्य पर पार उतरना ही होगा, भले ही कठिन से कठिन आदर्श को फलिन न किया जा सके, ऐसी दशा में भले ही हों, तब भी उसमें हृदय में हृदय से हृदय के आदर्श की भावना को जीती-जागती चेतनात्मक जागृतियुक्त होगी, तो उस संग्राम को खेले बिना कैसे बैठे रहा जा सकता है ? और ऐसा संग्राम जहाँ खेला जाएगा उसमें से ही सही ओज, पराक्रम, तेजस्विता आदि विकसित होंगे । इससे तो जीवन फलेगा-फूलेगा । अब जब कि बहुत अनिच्छा होने पर भी हो रहा है तो होने दो । जीवन के ध्येय को साकार करने के लिए हमारे दिल में जिज्ञासा तो अग्नि जैसी है, उसमें तो कोई अंतर है नहीं । वह तो दीपक के समान स्पष्ट है । ऐसी ज्वलन्त सोच के साथ दिल के दीये को सतत जलाये रखने की प्रक्रिया श्रीप्रभुकृपा से ही चल रही थी ।

''शादी की तैयारी हुई । दिल से दिल कह रहा था, 'बच्चा, देखो अब ही तुम्हें तुम्हारी तमन्ना की, भावना की सही समझ आनेवाली है ।' घर से (नड़ियाद से) शादी करने निकला तब से ही उस दिल के आदर्श की प्राणवान जल रही ज्योति प्रज्वलित हुई अनुभव कर रहा था । आदर्श पर की भावना का प्रवाह उड़ते हुए अनुभव कर रहा था । कभी-कभी बाह्य सजगता भूल जाने के भी क्षण आते थे तब वापिस एकदम अचानक जाग्रतता को टिकाये रखने के लिए मन ही मन में भजन गाने हेतु प्रयत्नशील

होता और स्मरण-प्रार्थना भी करता जा रहा था । शादी करने मंडप में बैठा था और पुरोहित महाराज संस्कृत में अगडम्-बगडम् बोल रहे थे, वह कुछ समझ में आ रहा था । उसके बाद धीरे-धीरे शरीर की सजगता जाने लगी थी । तब भजन गाने या इस ढंग के दूसरे साधन व्यक्त होने का अवसर भी न था, वह अनुचित भी लग रहा था विशेषकर मेरी माँ को पसंद नहीं आएगा । इतना ही नहीं, उसे तो इतना अधिक खराब लगेगा कि, 'चूनिया ने तो मेरी आबरू ले ली ।' मेरी माँ को कितना भयंकर आघात लगेगा, ऐसा उसे होनेवाले-दिल में दिल से होनेवाले भयंकर आघात के जो प्रत्यक्ष दर्शनात्मक विचार मुझे स्फुरित हुआ उसी कारण से जो बह बाह्य सजगता चली जाती लगती थी, उसे प्रदीप्त करने भजनादि साधन न हो पाये और ऐसा होते-होते अंतिम एक ऐसी उत्कट भावावस्था जागी कि जिसमें बाह्य का बिलकुल भान ही न रहा था । ऐसी स्थिति एकाद घण्टे तक रही होगी । सचमुच तो इस विवाहित जीवन की सही घड़ी पर ही जीवन के आदर्श की भावना के साथ जिस प्रसंग पर टक्कर ली, उसके परिणामस्वरूप ही उस जीवन के भावना का मिजाज और झुकाव किस प्रकार का था, उसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे उस समय हुआ । इससे यह 'जीव' श्रीप्रभुकृपा से निश्चित हुआ ।''

'सचमुच ज्वालामुखी के समान दिल के भभकते प्रचंड अग्नि समान जब जीवनआदर्श की जिज्ञासा जागृत हो जाती है, तब वह अपना मार्ग स्वयं ढूँढ लेती है, उसका भी प्रभुकृपा से अनुभव हुआ । उस युवती के शरीर की मृत्यु गौना होने से पूर्व शादी के पाँच ही महीने में हो गई ।'

'शादी के समय से ही इस जीव का शरीर समाधिस्थ स्थिति में था। उसे देखनेवाले आज भी संसार में कोई न कोई तो विद्यमान हैं ही। मेरी शादी करवाने में मेरे साथ कोलेज में पढ़नेवाले कुछ नागर युवक भी थे तथा अभी मेरी बड़ी भाभी जीवित हैं, जिन्होंने इस प्रसंग का अनुभव किया है।'

५. नग्न अवधूत का आगमन

मन की कई पर्तें हैं और प्राण के भी अगम्य स्तर होंगे ! जो मथता होगा वही इन्हें जान पाएगा। श्रीमोटा को साधना करते करते अनेक प्रकार की ऊब और उलझनें आतीं। प्रभु को प्रार्थना करते हुए भी उनके निवारण का कोई उपाय नही मिलता ऐसा अनुभव होता।

प्रभु के मानो कान, आँख या हृदय न हो और कुछ भी देखते सुनते न हों ऐसा अनुभव होता। अपार गहरी दारुण यातना बनी ही रहती। यह वेदना-दबाव किसका होगा ?

किन्तु अब पीछेहठ थोड़े ही की जाती होगी ? हृदय में उम्मीद रखकर प्रभु के पास आने निकले किन्तु इस मार्ग के स्वयं जानकार नहीं थे। उल्टे मार्ग पर चल पड़ने से क्या होगा ? किन्तु उनकी दृष्टि के सम्मुख तो ध्येय ध्रुव समान स्थिर और स्पष्ट है। इसीलिए सद्गुरु को दृष्टि के सम्मुख रखकर ही आगे कदम रखते हैं।

एक दिन किसी ने आकर कहा, ''भगत ! कोई नग्न अवधूत आ पड़ा है। बिलकुल हिलता डुलता भी नहीं है।'' यह सुनकर उनके अंतर में कुछ स्फुरण हुआ। तुरन्त ही श्रीमोटा तो

पाठशाला का काम दूसरे शिक्षकों को सौंपकर घर जाकर, नहाकर, स्वच्छ हो दूध लेकर नग्न अवधूत थे, वहाँ पहुँच गये । वहाँ बैठकर स्मरण प्रार्थना करने लगे । दो घण्टे बाद वे कुछ हिले-डुले । उनकी आँखों के सामने देखते हुए श्रीमोटा को लगा कि ये अवधूत कोई महान कोटि के आत्मा हैं ।

उन्होंने उन अवधूत को जागते देखकर प्रार्थना की, 'हे प्रभु ! मुझ पर कृपा करें । साधना के पुरुषार्थ में चेतनापूर्ण वेग देते रहें और मेरी साधना लगातार अतूट चला करे । इस प्रकार का बल प्रेरित करते रहें ।' ऐसी प्रार्थना और स्मरण की मस्ती में तन्मय हुए श्रीमोटा को समय का भी ख्याल न रहा ।

उन अवधूत ने श्रीमोटा को किसी मुसलमान के घर स्वयं को ले जाने की सूचना दी । ऐसे अवधूत कक्षा के लोगों का आदेशपालन का अभ्यास होने से कुछ भी विचार तर्क किये बिना एक यूनानी हकीम साहब के घर ले जाने की संमति प्राप्त कर ली और पर्देवाली अंधेरी घोड़ागाड़ी में बिठाकर नग्न अवधूत को हकीम साहब के घर ले आये । उस जोखिम की संपूर्ण जवाबदारी से वे सजग थे ।

ये अवधूत खास कुछ बोलते नहीं । शरीर काफी हृष्टपुष्ट और भारी भी था । सब्जी रोटी खाते थे । भूमि पर बिखरी हुई रोटी के छोटे-छोटे टुकड़ों को बीनकर खाते । कभी मराठी में तो कुछ टूटी फूटी हिन्दी में बोलते, किन्तु कुछ भी समझ न आये ऐसा बोलते ! रात को उनकी सेवा श्रीमोटा करते । एक दिन ऐसा करने दिया ।

मुँह साफ करने की और मल-मूत्र करने की व्यवस्था की गई थी । किन्तु उसका उपयोग उन्होंने कभी किया ही न था । वे

घर में कहीं भी टट्टी जाते । श्रीमोटा सब कुछ प्रेमभाव से साफ कर डालते । बाद के चार दिनों में उस अवधूत ने मलमूत्र किया ही नहीं । लगभग दस-बारह दिन वे रहे भी किन्तु परस्पर किसी भी प्रकार की बातचीत नहीं हुई ।

एक दिन वे जाने की तैयार करते हों ऐसा लगने पर श्रीमोटा ने विदाई करने का प्रबंध किया और बिदा करने उत्तरसंडा के रास्ते तक गये । तब उस अवधूत ने कहा, 'तुम मेरे साथ चलो ।'

तब श्रीमोटा ने नम्रतापूर्वक प्रार्थनाभाव से कहा था, 'प्राप्त कर्म, प्राप्त परिस्थिति, प्राप्त संयोग और उसके प्रति प्रगट हुआ धर्म श्रीप्रभुप्रीत्यर्थ योग्यता से प्रेमभक्ति से पालन करना—इसे मैं प्रत्यक्ष धर्म मानता हूँ । तथापि आप यदि मुझे साधना में गति प्राप्त करने हेतु दान देते हों तो मैं आऊँगा । इतना ही नहीं आपके दर्शन मुझे प्रत्यक्ष होते रहें और आपके निवास तक आने के पैसे प्राप्त हों सकें तो मैं आऊँगा ।'

वे नग्न अवधूत तो इतना सुनते ही विदा हुए । श्रीमोटा ने उन हकीम साब के द्वारा जाना कि ये नग्न अवधूत तो शिरडी नजदीक साकोरी (जि. अहमदनगर, महाराष्ट्र) के पूज्य उपासनी बाबा थे ।

६. मन:स्थिति का साक्षात्कार

बारडोली सत्याग्रह की तैयारी चल रही थी । उसमें जाने की तैयारीवाले स्वयंसेवक के रूप में श्रीमोटा थे । उसी दिन सत्याग्रह में जाने का आदेश मिला । अचानक उपासनी महाराज के दर्शन हुए और ऐसे दर्शन बार-बार होने लगे । तब श्रीमोटा को पूज्य

उपासनी बाबा को विनती की थी उसका खयाल आया । पहली विनती का उत्तर प्राप्त हो रहा था ।

इतना ही नहीं, श्रीमोटा वैष्णव हवेली के पास से मस्ती से भजन गाते-गाते जा रहे थे, तभी किसी ने आकर उन्हें पैंतालीस रुपए दिए । श्रीमोटा बहुत आश्चर्य चकित हुए । इसी भजन को गाने पर पहले किसी ने उन्हें एक थप्पड़ लगायी थी । किन्तु तुरन्त ही खयाल आया कि साकोरी जाने का निश्चित हो रहा है । श्री सद्गुरु की इस प्रसादी को लेकर श्रीमोटा हरिजन सेवक संघ में से छुट्टी लेकर साकोरी पहुँचे ।

वहाँ जाकर, नहा-धोकर बाबा के पास गये तब बाबा ने स्वयं के पास एक लकड़ी के पिंजरे के बाहर बैठने की आज्ञा दी । श्रीमोटा तो वहीं बैठकर अपनी साधना का अभ्यास करने लग गये । साधना का अभ्यास बढ़ाने से मन धीरे-धीरे प्रभु में एकाग्र तो हुआ ही था । यहाँ बैठे-बैठे पाँच-छः घण्टे गुजर गये तब तक लघुशंका जाने की वृत्ति हुई ।

किन्तु 'मुझसे उठा ही नहीं गया । पैर जकड़े नहीं थे, तब भी खड़ा नहीं हुआ जा रहा था । यह एक समस्या थी । इसलिए बैठे-बैठे ही खिसकते जाने का सोचा । ऐसा भी संभव नहीं हुआ । कमर में भी नहीं दु:खता था । इस सारी करामत के पीछे पूज्य उपासनी बाबा है ऐसा श्रीमोटा को लगा । लघुशंका की वृत्ति प्रबल थी । प्रार्थनादि भावना में टिकने के लिए समान रूप से प्रयत्न कर देखे, स्मरण, प्रार्थना, ध्यान आदि भावना में टिकने का प्रयत्न किया । ध्यान में जाते ही ध्यानस्थ दशा के भाव में, ऐसी स्थिति के लिए पूज्य बाबा का उद्देश्य होना चाहिए, इसकी पारदर्शी सजगता आई ।' और स्वयं की तीसरी शर्त भी फलित होती हुई श्रीमोटा को संभव होने लगी ।

इससे लघुशंका जाने का संकोच जाते ही बहुत पानी निकलने लगा । मल भी वहीं पर बैठे बैठे हुआ । आसपास मलमूत्र का चार फूट का बिछौना हुआ । चार-पाँच दिन तक खाना-पीना कुछ भी नहीं मिला । ऐसा देखकर लोगों ने श्रीमोटा को पत्थर मारना शुरू किया । लोग बोलते, 'साले को उठाकर फेंक दो । इसे (बाबा) साधू हो जाना है !' किन्तु मल के बिछौने में उतरने की किसी की हिंमत न हुई । लोग दूर से ही पत्थर फेंकते रहे । पूज्य उपासनी बाबा यह सारा खेल देखते रहते । मात्र एक बहन लोगों को समझाती थी । वह बहन अर्थात् अब की पूज्य गोदावरी माता ।

'इतना अधिक मार पड़ने पर भी मनादिकरण की समाधि के भाव में जरा भी भंग नहीं पड़ रहा था । एक ओर ऐसे भाव की सतत पवित्र पावनी गंगाधारा चल रही थी दूसरी ओर लोगों के मार की रुक रुककर धारा चल रही थी । तीसरी ओर मलमूत्र की क्रिया का प्रवाह भी जारी रह रहा था । तब भी एक साथ साक्षीभाव से यह सब निरीक्षण भी चल रहा था । ऐसे तीन पहलुओं में भाव सामरस्य सतत एक स्थापन का सजग हो प्राणवान रूप में अनुभव हो रहा था । पाँचेक दिन का समय एक पल में बीता जा रहा हो ऐसी वह स्थिति थी ।'

उसके बाद वहाँ दो-तीन दिन रहकर श्रीमोटाने पूज्य उपासनी बाबा को प्रणाम किया और नड़ियाद जाने की अनुमति ली । पूज्य उपासनी बाबा ने जाने की संमति दी और बोले, 'तुम्हारी यह स्थिति हमेशा रहेगी ।'

श्रीमोटा साकोरी से नड़ियाद लौट आये । पुन: वही चक्र आरंभ हुआ — हरिजनसेवा का कार्य और साधना का क्रम । श्रीमोटा के मन कार्य भी साधना का महत्त्वपूर्ण अंग था ।

७. केशव चरण कमल में

चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते हरिभजन होता जा रहा है । अंतर में धधकती ज्वाला के समान इच्छा है । 'सभी में समरस अनुभव करना है ।' इसके लिए तन न्योछावर किया है और मन भी भेंट हुआ है परन्तु हृदय अभी हाथ में रहता नहीं ।

अंतर की यह सच्चाई होते हुए भी वेदनाभरी बात जाकर किससे कहें ? परम प्रेमस्वरूप चैतन्यघन श्रीकेशवानंदजी दादाजी के साथ बैठ कर श्रीमोटा प्यार से आनंद की बात कहते हैं और आर्द्र भाव से कृपा की याचना करते हैं । दिन और रात सिर पटक-पटक कर आँहें भरते हैं । आशा ही आशा में बहुत दिन बीतते जाते हैं किन्तु हृदय में अभी भी एक तन्मयता नहीं आ पायी है । मन को जरा भी चैन नहीं मिलता । कहीं भी चैन नहीं । हृदय की यह भूख किस तरह चरण में समर्पित हो ? उर में ज्वाला जल रही है । मन ही मन में संताप करते हैं, 'मेरे कर्म में क्या ऐसा ही लिखा होगा ?'

स्वयं एक से एक पद्धतियाँ प्रयुक्त कीं तब भी लेशमात्र भी राश न आईं । तब अंतर से ऐसी प्रार्थना जन्म लेती है । गुरु को रिझाने अनेक यत्न करने पर भी एक भी युक्ति अनुकूल नहीं आयी । अंतर में बहुत मचला, बहुत यत्न किये तब भी एक भी युक्ति काम न आई । अंतर में बहुत तड़पन हुई । बहुत प्रयत्न किये पर लेशमात्र भी सफलता न मिल पाई ।

इतना होने पर भी श्रीमोटा हताश नहीं हुए । ध्येय के प्रति गति मंद नहीं पड़ती । उल्टा बल बढ़ता है । संकल्प दृढ़ होता है । 'जैसे तेज से तेज दिखता है और हीरे से हीरा बींधा जाता

है ।' वैसा गुरुकृपा से होता है, ऐसा निश्चित है । 'ऐसा करने के लिए' पृथ्वी और आकाश एक करने जितना यत्न कर डालते हैं । कैसे भी हो हाथ में लिया काम ध्येय प्राप्ति बिना नहीं छोडूँगा की निश्चितता है । 'पहाड़ जैसे विघ्नों से न डरने की हृदय में हिम्मत है । जो कुछ भी साधना हुए जा रही है, वह सब गुरुकृपा का ही प्रभाव है ।'

क्वचित् गुरुकृपा से शांति, आनंद की दिव्यानुभूति का स्पर्श होता होगा । किन्तु जहाँ तक किसी प्रकार की भावना अखण्डाकार न हो जाय, तब तक परम के स्वरूप का अनुभव ही नहीं गिना जाएगा । अंत:करण से काम, क्रोधादि के सूक्ष्म बल एक साथ आ जाने पर उन्हें हटाने हेतु भक्तिरस में धुल जाने के लिए साधनामार्ग में बहुत मथना पड़ता है ।

मन की एकाग्रता होने पर और वह एकाग्रता अखण्डाकार होने पर भावना के प्रदेश में प्रवेश करने से पहले वृत्ति आदि के भयानक स्वरूप दिखाई देने पर भयभीत होने की स्थिति आ जाती है । सद्गुरु के साथ का अनुसंधान साधक को ऐसी नाजुक स्थिति में टिकाये रखता है । ऐसे दर्शन तो पावभर सेर बाट में पहली पूनी जैसा है । श्रीमोटा खण्ड (अपूर्ण) से जरा भी संतुष्ट न थे । पूर्णता को प्राप्त करने की आतुरतावाले लेश भी अपूर्णता में चैन से नहीं बैठते ।

उन्हें तो प्रभु का अमृत रस पल-पल अनुभव करना है । इसी कारण वे व्याकुल हो जाते हैं । कामक्रोधादि के कारण जो वेग उत्पन्न होता है, उसे सह लेते हैं । उसके आक्रमण से वे डरते नहीं । सभी कठिनाइयों को हटाकर पौरुष से वे ऊपर उठते हैं । बहुत अभ्यास से मन में वैराग्य दृढ़ करने प्रभुकृपा से बहुत संघर्ष

किया । बहुत सिर पटका पर जो सिद्ध न हो पाया था वह था गुरु की कृपा से सहजता से ही सिद्ध हो गया । इससे पल-पल अंतर डूबा रहता है । किन्तु अब अमृतभाव की अखण्डितता कब सिद्ध होगी ?

स्मरण की अखण्डता कब होगी ? साधना मार्ग पर विकसित होने पर पन्द्रह से सोलह घण्टे तक सतत स्मरण हो पाया था किन्तु स्मरण भाव अखण्ड न हो पाता था । इसमें स्मरण के अमृतानंद में अखण्डता न हो पाती थी । इसमें स्मरण के अमृतानंद में अखण्ड होने का संघर्ष चल रहा था और इस कार्य में गुरुकृपा की याचना सतत चल रही थी ।

१९२७ के जून महीने से चल रही प्रार्थनाओं में श्रीमोटा की यह संघर्ष यात्रा अंकित है ।

८. सर्पदंश, कृपा-स्पर्श, अखण्ड स्मरण

श्रीमोटा १९२८ में बोरसद तालुका के बोदाल आश्रम में थे । रात होते ही एकान्त स्थल खोजकर सोने गये । आश्रम में बहुत ही भीड़ थी । इसलिए श्री ठक्कर बापा और श्रीकान्त शेठ भी एकान्त जगह खोज रहे थे । श्रीमोटा को एकान्त में देखकर दोनों श्रीमोटा के साथ सो गये ।

रात में श्रीमोटा की जांघ पर सर्प ने डंख मारा । सर्प दंश का जहर तीव्रता से चढ़ रहा था । सर्पदंश के रोगी को मार-मारकर भी जगाये रखना चाहिए । जिससे जहर निकालें उससे पहले वह चल न बसे । इस धारणा से श्रीमोटा तो बहुत जोर से 'हरि:ॐ' का जाप करते ही जा रहे थे । बेहोशी की हालत और भयंकर तीव्र

वेदना का आक्रमण बढ़ता ही जा रहा था । साँप का जहर मृत्यु का अनुभव हो इस सीमा तक वेग पकड़ रहा था । श्रीमोटा को कोई पूछें पर वे उत्तर ही न दे रहे थे, क्योंकि जीवन का ध्येय प्राप्त नहीं हो पाया था । जन्म का साफल्य समय लाँघ न पाये उससे पूर्व मृत्यु की शरण में नहीं जाऊँगा, ऐसा दृढ़ और अटल निश्चय था । जीना था किन्तु जीवन के ध्येय को फलीभूत कर ।

उन्हें अलग-अलग स्थलों पर ले जाया गया और अंत में आणंद के डॉक्टर कूक के अस्पताल में उनकी होजरी साफ की गयी । अंतड़ियाँ साफकर जो तरल द्रव्य निकला उसका पैथोलोजीकली पृथ्थकरण करने पर पता लगा कि उसमें जहर तो उस समय भी था । सर्पदंश के बाद छियत्तर घण्टे तक लगातार नामस्मरण हो पाया था । सोलह घण्टे तक रूकी स्मरण गति अखण्ड हो गई ।

'प्रभु ने कृपाकर यह घटना जाप एवं भावना को अखण्ड करने हेतु दिया । बहुत जोर-जोर से जाप होता जा रहा था । अजाप-जाप का अनुभव प्रत्यक्ष होता जा रहा था । एक ओर से जहर की असर से अंदर के बेहोशी की स्थिति छाती जाती और बेहोश हो गये तो मृत्यु का भयानक पंजा पड़ेगा ही । अतएव ऐसा न हो इसके लिए अंतर से चेतनायुक्त जागृति जगाकर नामस्मरण जोर-शोर से चलता रहे, ऐसे प्रचंड भयानक युद्ध में कूदने से तथा नामस्मरण लगातार समान रूप से ऐसे क्षणों में जारी रहने से सर्पदंश एवं उसके जहर की असर से बेहोशी छाने के पलों में भी जागते हुए उसका संपूर्ण उपयोग ज्ञान-भक्तिभावपूर्ण हृदय की चेतनायुक्त जागृति से सामना हो पाया था । यही उनकी परम कृपा थी । उसमें से जाप की अखण्डता की स्थिति प्रगट हुई । इस प्रकार

बाद में तो प्रत्येक प्रसंग में प्रभुकृपा से आचरणमूलक उपयोग से हृदय में ज्ञान चेतना प्रगट होती जाती । तब इस जीव को एकान्त, शान्ति बहुत ही आनंद देती । उस समय ज्ञानभाव प्रगट होते हुए भी कभी जतलाया नहीं । हमेशा नम्र से नम्र रहते हुए प्रभुकृपा से आगे बढ़ते ही जाते । प्रत्येक वर्ष एकाद महीने के लिए एकान्त में चले जाते । (जीवनसोपान, पृ. ३२२-३२३)

९. ऊर्ध्वकक्षा की कसौटी

''एक बार हरिजन सेवक संघ से एक महीने की छुट्टी लेकर मध्यप्रदेश गया था । उस अवधि में चौबीस-पच्चीस दिन तक किसी भी प्रकार का आहार या पानी या दूसरे पेय पदार्थ बिना मात्र स्वयं का मल ही रोज-रोज अंतिम दिन तक जो निकलता, वही मैं खाता और जो पेशाब होता वही पीता । इससे शरीर की मलशुद्धि भी अच्छी हुई और शरीर की स्थिति भी अच्छी होती गयी ।

मल खाते हुए घिन नहीं आती । मल में दुर्गन्ध नहीं होती । गोबर जैसा स्वाद लगता था । उत्कट भावना के कारण यह सब संभव हो सकता है ।

इसे अघोरी साधना का प्रकार गिन सकते हैं । किन्तु मुझे किसी ने यह साधना करने का निर्देश नहीं दिया था । स्वयं ही मुझे ऐसा सूझा था । इतने से मेरी भूख-प्यास शान्त हो जाती । पर्याप्त हो जाता था ।'' इस प्रकार की कसौटी स्वादवृत्ति की गुत्थी तोड़ने के उद्देश्य से भी हुई होगी !

• • •

विभाग - ५ : सूक्ष्म संग्रामयात्रा

१. क्षण-क्षण में नूतन

मन, हृदय के गहरे-गहरे स्तरों से नयी-नयी भाव वृत्तियाँ जागती हैं । मार्ग में जो मानकर चले हों वह मिल जाने से, अभी भी नया और दूसरा महद् तत्त्व प्राप्त करना तो सामने आकर खड़ा ही रहता है ।

स्मरण-साधना प्रभुकृपा से अखण्ड बन चुकी है । यह साधना से भी सूक्ष्म बनकर अनेक गुनी शक्तिवाला अनुभव हो रहा है । उसमें से अन्य गूढ़ साधनों की अंत:स्फूरणा उत्पन्न होती रही है । उसके अभ्यास का आरंभ होता है और लगातार होने से उसमें एकाकार की स्थिति आती जाती है ।

श्रीमोटा की साधना की प्रक्रिया में एकाग्रता, केन्द्रितता, क्रमबद्धता, समग्रता और पारदर्शिता थी । इसलिए उस क्रम से साधन भी नवीनता धारण करते जा रहे थे ।

भीषण दृश्य दीखते किन्तु भय नहीं लगता था क्योंकि जो प्राप्त करना है उसकी स्पष्ट चेतना दृष्टि समक्ष चेतनाशील रहती थी । जिसका स्मरण हो रहा है, उसके सर्वव्यापक भाव को रगरग में रोमरोम में व्याप्त कर सक्रिय करना है ।

श्रीमोटा की साधना रीति में एक दूसरी नवीनता थी । प्रतिवर्ष एक महीने की छुट्टी लेकर एक महीने तक किसी भीषण और भयंकर एकान्त स्थान पर जाकर साधना का अभ्यास दृढ़ और पक्का करते रहना ।

२. प्रतिवर्ष एक महीना

एक महीने की छुट्टी लेकर श्रीमोटा एकान्त, निर्जन स्थान में जहाँ पास में जलाशय हो ऐसे स्थान पर साधना की उपासना में सारा समय व्यतीत करते ।

'जब-जब जहाँ-जहाँ जाना होता वहाँ भोजन करने की या खाना खाने की प्रवृत्ति में कभी भी सम्मिलित न होता । जब-जब भूख-प्यास लगे तब निकट के जलाशय से पानी पी लेता । जहाँ जाता था वह स्थान बिलकुल निरा-निर्जन और बस्ती से अत्यधिक दूर होता था और जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य भरपूर होता, ऐसा स्थल पसंद करता । इससे वहाँ किसी मनुष्य की टक्कर में आ जाना एकदम से होता न था । कम से कम चार से पाँच दिन निराहार रहना पड़ता । कभी तो इससे भी अधिक दिन आहार लिये बिना निकल जाते । ऐसे कठिन दिनों में भी भूख की पीड़ा ने मुझे कभी नहीं सताया । वह भगवान की परमकृपा, किन्तु उसके बाद ठीक समय पर कोई न कोई भोजन की थाली रख जाता सही । किसी को ऐसा लगता कि कोई युवक यहाँ तप करता है, इसलिए वे ऐसी सेवा कर डालते थे ।' ऐसा श्रीमोटा को कहते हुए सुना है ।

'मुझे तो मात्र एक ही बात की लगन लगी रहती थी । अलग-अलग प्रकार के साधनों का अध्ययन करना और उसमें से जो सूझा करता था उसमें प्रवेशकर, उसके अनुसार संचालित होना और उसमें गतिमान रहना उस समय यही एकमात्र सूझा करता । जैसे धनुर्विद्या में लक्ष्य के प्रति एकाग्रता दृष्टि केन्द्रित रहती है और जो लक्ष्य हो उसी पर दृष्टि एकदम दृढ़तापूर्वक, निश्चित रूप से बनी रहे ऐसी भावना में सदा रहने को आतुर रहा करता । यद्यपि उसमें

भी मंदता के दौर यदाकदा आते ही रहते थे और कभी तो ऐसी भाटे की असर भयंकर टीस देती रहती ।

३. उद्देश्य की ही सजगता

एक समय श्रीमोटा चित्रकूट नाम के किसी निर्जन स्थान पर एक महीने के लिए गये थे । वहाँ एक विद्वान पंडित नित्य भोजन देने आते थे । श्रीमोटा तो किसी के साथ कुछ भी बातचीत नहीं करते थे किन्तु समय समाप्त होने पर नड़ियाद लौटते समय पंडितजीने श्रीमोटा के घर का पता ले लिया ।

एक दिन वही पंडित नड़ियाद पधारे । श्रीमोटा की माँ सूरजबा के पास से सीधा (कच्ची भोजन सामग्री) लेकर उन्होंने स्वयं रसोई बनाई । वे भी घर में कभी सोते न थे, इसलिए श्रीमोटा के साथ वे स्मशान में सोने गये । श्रीमोटा तो अपनी साधना में लगे रहे । पंडितजी कुछ साधना करते रहे । पंडितजी की साधना प्रेतविद्या से सम्बन्धित थी; ऐसा प्रभाव श्रीमोटा के मन पर पड़ा ।

फिर अपनी मंत्रविद्या से पंडितजी ने प्रेतयोनि प्रत्यक्ष कर बतलायी और श्रीमोटा से कहा, 'मुझे इस विद्या का अंतिम एक चरण पूर्ण करना है । उसकी परिपूर्णता के लिए अमुक प्रकार का यज्ञ कर उसमें अमुक अमुक आहुतियाँ देनी होती हैं । यदि यह सारी विधिपूर्वक पूर्णाहूति की जाय तो मुझे इस विद्या की संपूर्ण सिद्धि प्राप्त हो जाएगी ।' श्रीमोटा ने उन्हें कहा, 'हमारा इस विद्या से कोई सम्बन्ध नहीं है ।'

तब भी उन्होंने कहा, 'इस प्रेतविद्या से वाइसरॉय को भी डगमगाया जा सकता है और इसका दूसरों पर प्रत्यक्ष प्रयोग कर

उन्हें बतलाया जा सकता है । किन्तु इस विद्या की पूर्णाहुति के लिए मैं तुम्हारे पास से रकम लेने आया हूँ ।'

श्रीमोटा ने अपनी आर्थिक स्थिति की हकीकत स्पष्ट रूप से बतलायी और चन्दा द्वारा रकम एकत्र करने में भी विवशता बताई और उन्हें अहमदाबाद जाने का किराया देकर विदा किया ।

४. स्थल-दर्शन

श्रीमोटा साधनाभ्यास करते-करते अब एक ऐसे दर पर आ चुके थे कि एक महीने के एकान्त स्थल का उन्हें पहले से स्पष्ट दर्शन हो जाता ।

स्मरण, भजन-कीर्तन, प्रार्थना, आत्मनिवेदन, समर्पण आदि साधन सूक्ष्म होते जा रहे थे । ध्यान, त्राटक आदि का अध्ययन भी परिपक्व हो गया था । भावावस्था भी आने लगी थी किन्तु श्रीमोटा हमेशा साधना को लगातार और अखण्डाकार कर के ही चैन लेते थे ।

अब, मन प्रभुभाव में एकाग्र हो चुका था । तब भी उनके सूक्ष्म से सूक्ष्म आक्रमण भी होते रहते थे । हृदय तो प्रभु को पुकार पुकार कर चिन्तन मननरत था । उसे ही प्रभु में विलीन होना था । मन की एकाग्रता के बाद सूक्ष्म विचारों के भीषण स्वरूप भयंकर भयानक होते हैं । ऐसा समय बिताना दुष्कर है किन्तु गुरुकृपा से उसमें से भी बाहर निकल जाते हैं । वही फिर दूसरे संग्राम आ जाते हैं ।

दर्शनों की ऐसी प्रक्रिया में स्थल-दर्शन श्रीमोटा को स्पष्ट होने लगता । गुरुआज्ञा को शिरोधार्य कर वह स्थल चाहे कितना

ही भीषण क्यों न हो एवं वहाँ जाना कठिन क्यों न हो तब भी जाते ही, इसके लिए जान पर खेलकर भी कुशलतापूर्वक प्रयत्नशील रहते थे ।

५. धूवाँधार के पास की गुफा में साधना

एक वर्ष नर्मदाजी के किनारे के धूवाँधार प्रपात के दर्शन हुए । इस प्रपात के सामने खड़े रहकर देखने पर दायें हाथ की ओर के प्रपात के छोर पर एक गुफा जैसी थी । उसमें बैठकर साधना करने का आदेश मिला ।

निश्चित समय पर श्रीमोटा तो निकल पड़े किन्तु गाड़ी से उतरे वहीं जेब कट गयी । धूवाँधार की उस गुफा में उतरने के लिए कुशलतापूर्वक साहस करना था । इससे कुछ खर्च होगा ऐसा होने से अपने पास पैसे भी रखे थे ।

थोड़ा ही समय था । प्रभु ने कसौटी में डाल दिया । श्रीमोटा ने जबलपुर की एक दुकान पर जाकर बात की और किसी भी प्रकार के काम करने की तत्परता बतलाई और बतलाया 'शेठ, मुझे अमुक समय में ही अपना काम निपटाना है, अधिक समय खराब नहीं कर सकता ।'

शेठ ने पूछा, 'तुम बर्तन साफ करोगे ? कपड़े धोओगे ?'

श्रीमोटा ने प्रेमपूर्वक संमति दी इसलिए शेठ ने अपने घर टेलिफोन पर खबर दी, 'हमें नया नौकर मिल गया है । मैं उसे भिजवाता हूँ ।'

श्रीमोटा तो उस घर में उमंग और उत्साह के साथ कपड़े-बर्तन का काम करते, घर के बच्चों को प्रेम से रामायण, महाभारत

की बात कहते । आवश्यकता जितनी रकम प्राप्त हुई तो श्रीमोटा ने शेठ के पास से छुट्टी माँगी ।

श्रीमोटा ने कुछ ही दिन शेठ के घर में रहकर जो भाव भरा वातावरण बनाया, इससे शेठ ने भी श्रीमोटा को उनके काम के लिए उचित राशि दी ।

श्रीमोटा तो उस प्रपात के पास गये । उस गुफा में जाने के लिए कोई भी मार्ग सरल न था । प्रपात के आवाज से ही प्राण घबराहट अनुभव करे, ऐसा यह स्थान था । अब उस गुफा में पहुँचना और वहाँ बैठकर और फिर साधना की भावना में तल्लीन होना, यह कोई छोटामोटा काम न था । किसी की भी हिम्मत न हो, ऐसा वह स्थल था । 'नहीं चल सकता' ऐसा व्यक्तव्य भी ठीक नहीं है । बहुत से तो हिम्मत ही हार जाएँ, ऐसा वह था । परन्तु प्रभुकृपा से हमें तो आदेश मिला था, इसलिए उसका प्रेमभक्तिपूर्वक पालन कैसे हो, वही मात्र सोचना था । सचमुच, जब जो जो करना होता है, उसी के अनुरूप उत्साहमय हृदय हो जाता है, तो उसी से कर्म करने का उपाय तथा स्वयं की सुझबूझ भी मिल जाती है । ऐसा मेरा एक समय का नहीं किन्तु अनेक अवसरों पर चेतनवन्त अनुभव हैं ।'

श्रीमोटा ने प्राण मुट्ठी में रखने के साथ गुफा में प्रवेश किया । वहाँ वे इक्कीस दिन रहे । उन्होंने भोजन प्राप्त करने की व्यवस्था की थी । एक बड़े बाँस के किनारे डोरी बाँधकर और डोरी के किनारे पुड़िया बाँधकर प्रपात गिरता उस ओर से लोग निश्चित समय पर लटका देते ।

उसे लेने एक इन्चभर भी झुकना जोखम भरा था । कभी तो वह पुड़िया प्रपात में बह जाती । भोजन देनेवाले लोग समझते

कि भोजन पहुँच गया हैं। ऐसी जटिल कठिनाइयों को प्रेमभक्तिपूर्वक वहनकर साधनाभ्यास किया करते ।

इस समय दौरान अंतर में जो अनुभव होते होंगे उन्हें तो अनुभव करनेवाले के अलावा कौन जान सकता है ? अन्य तो इसकी कल्पना तक नहीं कर पाएँगे ।

६. जेल प्रवेश

समग्र देश में स्वतंत्रता संग्राम चल रहा था । देशसेवक जेलवास कर रहे थे । श्रीमोटा को भी जेल में जाने का आदेश मिला। श्रीमोटा को जिस प्रकार दर्शन से आदेश मिलता उसी प्रकार का ही यह आदेश होगा ।

देश की आजादी की भावना से प्रेरित होकर नहीं, किन्तु साधना की भावना अंतर में कितनी दृढ़ और प्रतिष्ठित हुई है, इसकी प्रतीति के उद्देश्य से और विपरीत स्थिति में साधना में लगातार रहने की तमन्ना से उन्होंने कारावास में जाने का निश्चित किया ।

एक वॉर्डर बहुत ही कड़क था और प्रत्येक स्वयंसेवक के प्रवेश करने पर मारता । सभी पंक्तिबद्ध मार खाते-खाते आगे बढ़ते । श्रीमोटा भी पंक्ति में आगे बढ़ रहे थे किन्तु अपनी साधना में एकाग्र थे । वहीं उन्हें एक आवाज सुनाई दी । आवाज स्पष्ट थी । मारनेवाले पर त्राटक करने की सूचना मिली । उन्होंने तुरन्त ही आगे पीछे के साथियों से पूछा, 'तुम्हें कुछ सुनाई दिया?'

उन लोगों ने ना कहा । इससे दृढ़ निश्चित हुआ कि आवाज स्वयं के लिए आदेश था । उस क्रूर और घातकी वॉर्डर के सामने जाने की बारी आयी । उन्होंने उनके सामने नजर डालकर त्राटक किया । वह उन्हें कुछ भी न कर पाया ।

जेल में उन्हें सौंपा हुआ काम संपूर्ण मौन रहकर, प्रार्थनाभाव से और साधना के उद्देश्य से किया करते । एक शब्द भी किसी के साथ नहीं बोलते थे ।

जेल में भेजकर गुरुमहाराज ने देशसेवकों में रहे राग-द्वेष के दर्शन करवाये । जगत का स्वरूप मानो उनकी आँखों के सामने खुल गया हो । समाजसेवा या देशसेवा की भूमिका में रागद्वेष हो तो समाज या देश स्वस्थ नहीं हो सकता । उन्हें ऐसा गुरुमहाराज ने समझा दिया था ।

जेल की परिस्थिति उनके चित्त को विचलित नहीं करती थी । अनेक प्रकार की आवाजें भी उनके मन एवं चित्त की एकाग्रता के लिए अवरोधरूप नहीं बनती थीं । वे तो बस अपने प्राप्त हुए और प्रक्रियागत अनेक साधनों को सिद्धकर करके ऊर्ध्वजीवन की संग्राम यात्रा में कूद पड़े थे और संघर्षरत ही रहते थे ।

७. जेल में हृदय-पुकार

सहन करने की शक्ति की कसौटी रूप प्राप्त जेलवास के दौरान श्रीमोटा के हृदय में मंथन होता है और संग्राम चलता है ।

विचारों की सृष्टि और व्यवहार की सृष्टि दोनों का मेल अभी पूरी तरह नहीं हो पाया था । हृदय में इसका संकोच दबाव की स्थिति पैदा करता है और अनेक प्रकार की द्विधाएँ पैदा होने लगती हैं । मुँह से बोला जाता है, वैसी करणी कब होगी ? यह गुत्थी कब सुलझेगी ? मन-हृदय के बीच का यह संताप - उधेड़बुन का निवारण कब होगा ?

जगत की इस शाला में से स्वयं बहुत सीखा है । किन्तु अब इस जगत को भूलना है । जगत के सारे व्यवहार भले ही विस्मृत हों । प्रिय स्वजन और स्नेही भी भले ही भूल जाँय । उन्हें उनकी कोई परवाह नहीं । किन्तु 'प्रभु ! तुम्हारी स्मृति को तुम भुलाने न देना ।' ऐसा प्रार्थनाभाव व्यक्त होता ही जाता रहा है ।

हृदय अहर्निश अनुनय करता है । जहाँ-जहाँ सर्वत्र बाह्य के अंतर के बंधनों का दबाव अनुभव होता है । स्वयं का गहन पृथक्करण कर अपनी भूलों को खोजता है । और उन्हें सुधारने के लिए मन, चित्त और हृदय में शुद्ध होने के लिए बल की याचना करते हुए प्रार्थना करता है ।

दु:ख का मूल तृष्णा में है । जीवनविकास के मार्ग में अनेक प्रकार की तृष्णाएँ जाग्रत होती हैं । उनमें से गहरी खाई पार किये बिना निराशा जन्म लेती है । विषय में गहरे गयी हुई जड़ें स्पष्ट दिखाई देती हैं । अनेक जन्मों के संस्कारों से दृढ़ हुई श्रृंखला को तोड़ने के लिए भारी संघर्ष करना पड़ता है । आज तक का जीवन कैसा व्यर्थ चला गया, उसकी चेतना दर्द देती है । अभिनव वृत्तियाँ जगकर परेशान करती हैं । हृदय की निर्बलता की भी संपूर्ण चेतना स्पष्ट होती है । टेडेमेढ़े पहियों का खेल भी चलता रहता है और 'इससे तो मृत्यु अच्छी !' ऐसा खयाल भी आता है ।

जाग्रत हुए सभी प्रकार के संस्कारों के विरोधी बल का प्रभु को निवेदन कर, बल और शक्ति के लिए प्रार्थना करके भी स्वयं टिके ही रहते हैं । क्योंकि, 'हे प्रभु ! मेरे सिर पर तुम्हारी बड़ी मदद है, इसीसे मैं टिक पाता हूँ । नहीं तो कभी का ही गिर पड़ा होता ! किन्तु यदि तुम अपनी करुणा मुझ पर से कम कर डालो

इससे डरकर मैं तो चलता रहता हूँ। हे प्रभु ! तुम मेरा हृदयदौर्बल्य हर दो ! और तुम्हारे द्वारा प्रेरित साधना में सतत लगा रहूँ, ऐसा उत्साह मेरे हृदय में भर दो ।'

प्रभु की कृपा एवं सहायता द्वारा स्वयं अपने पर ही आधार रखकर आंतरिक संग्राम लड़ते ही जाते हैं, वहाँ अचानक यह तो कैसा अनुभव हो रहा है ? 'चारों तरफ भारी ज्वाला प्रसरित है । कहाँ जाऊँ ? हे प्रभु ! मन, चित्त और हृदय सारा जल रहा है, इस अग्नि के बीच तुम ही मेरा सहारा हो ।'

हृदय में अभी तक क्यों हरि का नशा नहीं चढ़ रहा ? प्रभु इस भक्त को अपने चरण से क्यों दूर धकेल रहे हैं ? किन्तु भक्त का निश्चय तो दृढ़ है, 'मैं तुम्हारे चरणों पर पड़ा हूँ और कभी भी लौटनेवाला नहीं हूँ। हे प्रभु ! मुझे अपने चरणों में पड़े रहने देकर अपने चरणकमलों का पूरा सुख दो । मेरे प्यारे ! अब तो राह देखता हूँ । निश्वास और धड़कते हृदय से तुम्हारी राह देखता हूँ । हे प्रभु ! मुझे तुम्हारे चरणकमलों में कब स्थान मिलेगा ? मेरे जीवन की यह एकमात्र इच्छा है । जब तक मेरा जीवनध्येय सिद्ध नहीं होगा वहाँ तक कभी भी आराम से, चैन से नहीं बैठूँगा ।

प्रभु ! तुम्हारे साथ मेरे जीवन को मिलाकर मन से समग्र भेद मिटा देने हैं । बूँद-बूँद से जैसे सरोवर पानी से भर जाता है, उसी तरह कदम बढ़ाते हुए मैं आगे बढ़ूँगा ही ।

जेल में रहते हुए यह हृदय की पुकार श्रीमोटा के हृदय-मंथन का आभास देती है ।

८. प्रकाश के संकेत

श्रीमोटा के अंतर में विकट संग्राम होने लगा । दिव्य जीवन के लिए संग्राम में सत्य ही विजयी बनता है । असत् तत्त्व घेर लेते हैं, पछाड़ देने लगते हैं, किन्तु मंथन करनेवाला श्रेयार्थी तो दुबारा संभलकर संग्राम करने लगता है । निराशा आने पर भी श्रीमोटा उसके वश में न हुए !

प्रभु को हृदय से प्रार्थना कर करके, साधना के अभ्यास में निरन्तर लगे रहकर, उसे अखण्डाकार रखते हुये प्रभु के मार्ग पर तेजी से आगे बढ़ते हुए श्रीमोटा को प्रकाश के संकेत दिखाई देने लगते हैं ।

१९३० में मन की नीरवता का साक्षात्कार होता है । मन की नीरवता का यह अनुभव क्षणिक नहीं था । श्रीमोटा साधना में कदम-कदम पर प्रभुभाव के जिन संकेतों को प्राप्त करते हैं, उन्हें अपने हृदय में प्रतिष्ठित करते जाते हैं । और, निरन्तर करते जाते हैं क्योंकि साधना द्वारा उद्देश्यपूर्वक उग्र तपस्या द्वारा, ऐसे भाव को स्थिर रख टिकाये रखने के लिए उनके अत:करण में भूमिका पक्की हो चुकी है ।

मन में अब विचार तक नहीं रहे । अपूर्व शांति मन में छा रही है । संसार के बवंडर अब मन को स्पर्श नहीं कर पाते । मन अब संपूर्ण रूप से प्रभु का हो गया है । ऐसा निष्पंद और नीरव मन प्रभुपद के मार्ग में तेजस्वी सहायता देने में समर्थ बन गया है । अब सांसारिक भूमिका से या मनोवृत्ति संस्कारों से कोई भी प्रेरणा मिलनेवाली नहीं है ।

किन्तु यहाँ निवास या आश्रय स्थल नहीं है । उल्टे अनेक गुना वेग है । ऊर्ध्वमार्ग की नयी यात्रा का आरंभ है । साधना में प्रत्येक शिखर उससे भी नये ऊँचे शिखर पर चढ़ने का आरंभ करना होता है । गति तो अनंत है किन्तु यहाँ एक बड़ा शिखर प्राप्त होता ही है ।

मन की शान्ति के साथ प्रसन्नता और उल्लास प्राप्त होता है । दिखाई देते सारे पदार्थ अति सुन्दर जैसे आभासित होने लगते हैं । खाद्य पदार्थ मीठे और मधुर लगते होते हैं ।

आध्यात्मिक जीवन की साधना में यह अनुभव एक दलदल के रूप में आता है । साधक का जीवनध्येय स्पष्ट न हो और साधना के पीछे के उद्देश्य की जीती जागती सजगता न हो तो ऐसे दलदल से निकलना कठिन होता है । श्रीमोटा की दृटि के सामने ध्येय स्पष्ट था और स्वयं की साधना के उद्देश्य के प्रति वे संपूर्ण सजग थे । इससे उन्हें कहीं भी अटकना न था ।

अब तो भाव वृत्तियों के अभिनव संग्राम के लिए योद्धा के जोश से जूझना था । समर्थ सद्गुरु के साथ-सहारे की संपूर्ण प्रतीति हुई थी ।

• • •

विभाग - ६ : परमपद की ओर

१. गुप्त साधना

श्री हेमन्तकुमार नीलकंठ श्रीमोटा के कार्यसंगी थे । १९३१ में साबरमती जेल में ये दोनों साथ थे । श्री हेमन्तभाई ने श्रीमोटा से पूछा, 'क्या गुनगुना रहे हो ?' किन्तु उत्तर नहीं मिला । एक का एक बार-बार पूछने पर श्रीमोटा इतना ही बोले, 'हरि:ॐ' का जाप कर रहा हूँ ।

साधनाप्रदेश के अनुभवों की तो ऐसी अनेक हकीकतें होती ही हैं । वे तो दिल में अन्तर्निहित रहकर जीवित रहती हैं । उस विषय में सहृदयी के आगे भी मौन सेवन किया है । प्रभुकृपा से जो कुछ भी उनका काम था वह अत्यन्त गुप्त रूप से हो ऐसी स्फुरणा हुई थी तो इसीसे सन् १९२६ से १९३८ तक सतत साथ में रहे साथी श्री हेमन्तभाई को भी कुछ भी ख्याल न आया था ।

१९३१ में बोदाल आश्रम के एक कमरे में वर्ग लेते हुए समाधि लग गयी थी । देह सजगता आने के बाद 'ऐसा मुझे कभी-कभी हो जाता है ।' ऐसा बताया था । हेमन्तभाई ने रात के दो-एक बजे श्रीमोटा को दिवाल के आगे या खिरनी के पेड़ के नीचे ध्यान में बैठे देखा था । इतना ही नहीं दूसरे दिन विपरीत काम करते देख उन्हें आश्चर्य भी हुआ था ।

बोरसद के अस्पताल में एक डॉक्टर ने हेमन्तभाई को कहा था, 'इन्हें भजन करते-करते देह सजगता चली जाती है और आँखों में से निरन्तर प्रेमभक्ति की अश्रुधारा बहा करती है । ऐसा मैंने बहुत बार देखा है ।'

लोगों ने इतना सारा देखा, जाना तब भी स्पष्ट रूप से अपनी साधना के विषय में किसी को कुछ भी नहीं कहा ।

२. नीरव मन की प्रसादी

ई. स. १९३२ में श्रीमोटा वीसापुर जेल में गये थे । आश्रम के विद्यार्थिओं ने श्रीभगवद्गीता गुजराती भाषा में लिखने की विनंती की थी । श्रीमोटा तो अपने साधनाभ्यास में ही मग्न रहते । इससे किसी भी प्रकार के धर्म पुस्तक या शास्त्र नहीं पढ़े थे । विद्यार्थिओं की विनंती पूर्ण करने के लिए उन्होंने गीता पढ़ी ।

श्रीमोटा गीता का एक अध्याय पढ़ने के बाद प्रभु की प्रार्थना करते । और गीता के उन-उन अध्यायों का तात्पर्य खुलता जाता । सरल गुजराती में अनुष्टुप छन्द में उन अध्यायों का ज्ञान वे लिख डालते ।

गीता का वह सरल गुजराती पद्यानुकरण श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण की अनुभव वाणी और ज्ञान है । वह श्रीमोटा के नीरव मन की प्रभु-प्रसादी है । श्रीमोटा द्वारा रचित 'जीवनगीता' उन्होंने अपनी माँ सूरजा को पढ़कर सुनाई थी । गीता में क्या आता है, उसका खयाल बा को भी आ गया था ।

यह 'जीवनगीता' श्रीमोटा के अनुभव प्रदेश के विकासानुसार अभिनव रूप प्राप्त करते-करते आठ संस्करणों तक पहुँचा है । उसकी करीब दस हजार जितनी प्रतियाँ बिक चुकी हैं ।

३. भयानक आक्रमण

साधनाभ्यास करते-करते प्राण में छिपी हुई कामवृत्ति बलवान होकर भयानक आक्रमण लेकर आती है । श्रीमोटा की साधना में

यह वृत्ति बहुत बड़ा संग्राम मचा डालती है । प्रार्थना और स्मरण में बहुत लीन-मस्त रहते हुए भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता । कड़वे नीम के पत्ते चबाकर जिस वृत्ति का कब का शमन हो गया था, उसका ऐसा भयानक आक्रमण कठिन कसौटी बनकर आया ।

स्वयं जलाशय में कमर तक पानी में खड़े रहकर प्रार्थना करने लगे । गुरुकृपा से स्वयं सूझी हुई साधना भी करने लगे ।

चैत्र महीने में गर्मियों के मध्य श्रीमोटा ने इक्कीस दिन की एक कठिन तपश्चर्या की थी । एकान्त जंगल में जाकर खुल्ले आकाश के नीचे एक ऊँचे पत्थर के आसपास उपलों की त्रेसठ ढेरियाँ कर, उन्हें जलाकर, उस पत्थर पर नग्न बैठकर गूढ़-गुप्त साधना आरंभ की ।

यह अनुष्ठान पूर्ण होने पर भी वृत्ति का प्रश्न मूल में से सुलझा न था । स्वयं बहुत सारा संघर्ष करने पर भी युक्ति सानुकूल न आने से श्रीमोटा की व्याकुलता और व्यथा बढ़ गयी । गुरु को सहायता के लिए पुकार उठे । किन्तु सारा ही मानो सूना हो गया । पूज्य बालयोगीजी का स्मरण हुआ । मन में प्रश्न हुआ । गुरु को मिले बिना हल नहीं निकलनेवाला था । किन्तु अभी उन्हें कहाँ ढूँढ़े ? हरिद्वार में कुंभ का मेला था । वहाँ जाने का निश्चय किया और श्रीमोटा हरिद्वार गये । कुंभ का मेला यानी हजारों साधुओं का संगम स्थान । उनमें गुरु महाराज को कैसे ढूँढ़े ? चार दिन और रात गुरुमहाराज को पुकार लगाते लगाते श्रीमोटा खाये पीये बिना घूमते रहे । किन्तु गुरु महाराज कहीं न मिले । थककर जब हारने की नौबत आ गई तभी पास में ही गुरु महाराज के दर्शन हुए । एकदम दौड़कर उनके चरणों में गिरकर गद्‌गद भाव से प्रार्थना की ।

पूज्य बालयोगीजी ने कहा, ''मैं यहाँ तुम्हें देख ही रहा था।'

'अरेरे बापरे बाप ! तो फिर आपने मुझे क्यों न बुलाया ? इस लड़के पर आपको दया भी न आयी ?'

'हमें तुम्हें बुलाने की क्या जरूरत !' ऐसे लोगों की ऐसी न्यारी पद्धति होती है। श्रीमोटा ने अपनी सारी व्यथा का निवेदन किया। पू. बालयोगी महाराजने कुछ साधना बताई। उसका प्रेमभक्तिपूर्वक पालन श्रीमोटाने किया। परिणामस्वरूप कामवृत्ति प्रभु की प्रेमभक्ति में परिवर्तित हो गयी और वही वृत्ति बाह्यमार्ग पर सहायक बन गयी।

४. ध्येय सिद्धि के लिए

श्रीमोटा के अंतर में से हिमालय जाने का आदेश होता है। किसी चेतनानिष्ठ अनुभवी को मिलने का निमित्त कर्म स्पष्ट होता है। अब तो कुछ भी कर्म करना है, वह परमपद की प्राप्ति के लिए करना है। ध्येय-सिद्धि का उद्देश्य भी तीव्र हुआ ही है।

अपने साथ आवश्यक सामान लेकर श्रीमोटा हिमालय पहुँचते हैं। हिमालय पर चढ़ते थे, तब अनुभवी महात्मा कौन होंगे ? किस स्थान पर रहते होंगे ? तत्सम्बन्धी विषय में कुछ भी स्पष्ट न था। जैसे दर्शन हो, जैसा आदेश प्राप्त हो, उसके अनुसार करना था।

अब तक, स्पष्ट हो गया कि हिमालय के किसी अगोचर कोने में एक 'अघोरी साधु' रहते हैं। उन्होंने सामर्थ्य प्राप्त किया है। वहाँ पहुँचने का मार्ग बहुत विकट है। वहाँ सामान्य रूप से कोई पहुँच सके ऐसी निश्चित पगडंडियाँ भी नहीं हैं और चढ़ना भी कठिन है किन्तु आदेश पालन प्रेमपूर्वक करने का अभ्यास तो अब

सहज हो गया है । अपना सामान उठाकर अपने साथ चलनेवाले भारवाहक को इस स्थान पर ही रुकने को कहा । अपने पास जो रोकड़े रुपए और कागज़ पत्र थे उन्हें देकर कहा, 'भाई, तुम मेरा सामान, पैसे लेकर यहाँ बैठो और पाँच दिन तक मेरी राह देखना । पाँच दिन में मैं यदि न लौटूँ तो इन पत्रों को डाक में डाल देना एवं पैसे व सामान लेकर तुम चले जाना ।'

कठिन मार्ग तय करने के बाद मैदान आया । मैदान आने से आगे चलने में सरलता रही किन्तु सिर फट जाय ऐसी तीव्र दुर्गंध का प्रारंभ हुआ । श्रीमोटा को 'अघोरी बाबा' के निवास का संकेत रूप यह दुर्गंध प्रतीत हुई । जैसे-जैसे आगे बढ़ते त्यों दुर्गंध का प्रमाण बढ़ता जाता था । मार्ग में हड्डियाँ, खोपड़ियाँ, मल आदि पड़े थे । एक बड़ा वृक्ष आया । वहाँ अघोरी बाबा का निवास होगा, ऐसा स्पष्ट हुआ । किन्तु वहाँ कोई न था । सर्वत्र सुनसान था किन्तु श्रीमोटा तो वहीं आसन जमाकर अपनी साधना में तल्लीन हो गये ।

मध्यरात्रि हुई और भीषण दीखनेवाले, मैले-कुचैले और गंदे अघोरी बाबा आये । किन्तु दोनों में से कोई कुछ न बोला । अघोरी बाबा तो अपने नित्यकर्म में डूबे थे । श्रीमोटा भी अपनी साधना में डूबे थे । दोनों में से कोई भी कुछ न बोला । ऐसे तीन दिन बीत गये ।

चौथे दिन बाबा ने पूछा, 'क्या बच्चा ! भूख लगी है ?'

'जी हाँ ।'

'अच्छा, यह ले पी जा ।' ऐसा कहकर अघोरी बाबा ने रगड़ा जैसा कुछ पीने के लिए दिया और बोले, 'बच्चा, इससे तेरी भूख-प्यास मिट जाएगी ।'

श्रीमोटा ने वह स्वीकार किया । उसमें से तीव्र दुर्गंध आ रही थी । किन्तु स्पष्ट आदेश मिलने से श्रीमोटा तो उसे पी गये और तुरन्त ही भूख-प्यास शान्त हो गयी और भावावस्था में आ गये । लम्बे समय तक वे भावावस्था में ही रहे ।

जब वे जाग्रत स्थिति में वापिस लौटे तब अघोरी बाबा ने कहा, 'बच्चा, तुम्हारी मंजिल अब निकट आ गयी है । तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा पूर्ण हो सकती है ।'

श्रीमोटा तो इसी उद्देश्य से यहाँ तक आये थे । इससे प्रेमपूर्वक श्रीमोटा इसे सुनते रहे । अघोरी बाबा ने कहा, 'मैं तेरी महत्त्वाकांक्षा पूर्ण कर सकता हूँ । मगर तुझे यहीं मेरे साथ रहना पड़ेगा ।'

अघोरी बाबा श्रीमोटा को अपने पास ही आजीवन रखना चाहते थे । इसीसे उर्ध्वकक्षा तक पहुँचने पर भी ऐसे समर्थ साधकों में भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रकार की ऊर्ध्वकक्षा की सत्ताभावना (Hiararchy) हो सकती है, यह सोचने का भी श्रीमोटा को स्पष्ट दर्शन हुआ । श्रीमोटा का ध्येय फलित होने का उद्देश्य स्पष्ट और निश्चित था । तब भी संसार में रहकर कर्तव्यपालन में ऊर्ध्व भावों की प्रतिष्ठा करने का भी उन्होंने साधना के भाव से स्वीकार किया था । संसार के कर्मों को उन्हों ने अपनी साधना के एक महत्त्व के अंग के रूप में स्वीकार किया था । इसीलिए अघोरी बाबा की माँग स्वीकार करने में विवेक चूक हो सकती है, ऐसा लगा । अत: श्रीमोटा ने अघोरी बाबा की शर्त को पूर्ण नम्रता और भक्तिभावपूर्वक अस्वीकार किया और कहा, ''मैं तो मात्र, प्रेमभक्ति और भाव की तद्रूपता चाहता हूँ ।'

यह सुनकर अघोरी बाबा तो क्रोधित हो गये । धमकी देते हुए बोले, 'अच्छा, तो अब मैं देखता हूँ कि तुम इधर से कैसे जाते

हो । जाने की कोशिश करेगा तो जान खतरे में पड़ेगी । तू मेरा शिष्य हो जा और मेरे पास ठहर जा ।'

किन्तु श्रीमोटा की दृष्टि के सामने अपने ध्येय और कर्तव्य स्पष्ट थे । समर्थ सद्गुरु का पलपल का सहारा था, ऐसी ठोस प्राणवान श्रद्धा थी । इससे हृदय से मृत्यु का भय तो नाम मात्र का भी न रहा था । श्रीसद्गुरु को हृदय में उन्होंने संपूर्ण रूप से जाग्रत कर डाला था । अतएव, उन्होंने अघोरी बाबा की धमकी को नम्रतापूर्वक ध्यान में न लाये और प्रणाम कर लौट पड़े ।

नीचे उतरकर निकट के बहते झरने में स्नान कर भोजन बनाया और उस भारवाहक को भोजन देकर स्वयं खाना खाया । तभी एक विचित्र अनुभव हुआ । स्वयं का मल निकल गया है और उसका उन्हें पता भी न चला ।

स्वयं स्वच्छ हो आये तो फिर जाना पड़ा और उन्हें पूरा भरोसा हो गया कि उन्हें दस्त लग गये हैं। साथ ही उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि यह करामत उन अघोरी बाबा की है । दस्त का प्रमाण बहुत बढ़ने लगा । बार-बार साफ करने की समस्या खड़ी हो गई । इसलिए दूर एकान्त में उस झरने के किनारे कपड़ा बिछाकर स्वयं सो गये और भारवाहक को पैसे देकर विदा किया ।

शरीर की हालत नाजुक होती गई और धीरे-धीरे भान चला गया । एक पल ऐसा आया कि शरीर का भान भी नहीं रहा । निश्चेतन रूप में पड़े ही रहे । ऐसी अवस्था में भी श्रीमोटा प्रभु को पुकारते जा रहे थे ।

एक पल जब वे भान में आये तब कोई बंगाली साधु उनकी सेवा-चाकरी कर रहे थे, ऐसा उन्होंने देखा । उन साधु के पास

से जाना कि बीसेक दिन से उनके शरीर की संभाल और मल की सफाई वे साधु बाबा ही कर रहे थे ।

श्रीमोटाने कृतज्ञभाव से एक गर्म कम्बल और पच्चीस रुपए देकर कहा, 'प्रभु, मैं आपका क्या बदला चुका सकता हूँ ?' 'बच्चा, तुम्हें यह विचार नहीं करना है । मैं तो अपने गुरु महाराज के आदेश से यहाँ आया हूँ । तुम आराम करो, मैं आता हूँ ।' ऐसा कहकर साधु ने पीठ फेरी और अदृश्य हो गये । उस साधु-महाराज में श्रीमोटा ने पूज्य बालयोगीजी के स्पष्ट दर्शन किये ।

गुरुमहाराज ने स्वयं के लिए कैसा-कैसा किया इस कृतज्ञ भावना से हृदय भर आया और भावाश्रु की धारा बहने लगी ।

५. प्रभु के दर्शन–द्वैत का साक्षात्कार

१९३४ में गीता के पुरुषोत्तम का साक्षात्कार होता है । प्रभु का यह दर्शन स्पष्ट है ।

'दो-तीन बार श्रीकृष्ण दिखाई दिये । उनके दर्शन कृष्ण मुरलीधारी या इस ढंग से नहीं और न पार्थिव शरीर के तत्त्वों से युक्त थे । तब भी परम सौन्दर्य से लबालब भरपूर और अपार तेज के भंडार से परिपूर्ण सदेही कृष्ण के वे दर्शन थे । वह सारा सौन्दर्यमय था । सौन्दर्य ही सौन्दर्य । वे दर्शन अवर्णनीय थे ।

'दर्शन स्थिर न थे, चलते-फिरते, खेलते, पल में पास आते और पल में थोड़े दूर जाते भी लगते तो फिर पल में शरीर के अंदर प्रवेश करते अनुभव होते और वे आधार के भिन्न-भिन्न मनादिकरणों को स्पर्श करता हुआ तथा वहीं कुछ सूक्ष्म प्रक्रिया कर रहे हैं, ऐसा लगा करता था । कहीं-कहीं तो वे अंदर प्रवेश कर उसका

परिसंस्कार करते हों, ऐसा अनुभव होता । भृकुटि और ब्रह्मरंध्र में स्वयं को प्रस्थापित करते हुए और हृदय में बिराजमान अनुभव होते । समग्र आधार तप्तवर्णी और पूर्ण प्रकाश से आलोकित हुए लगते थे । स्वयं अपने में भी अनुभव कर सकें ऐसी भूमिका की भी अनुभूति हो रही थी तो कुछ पलों में उसका विस्तार भी अनुभव हो रहा था ।

६. इस दर्शन के बाद

'ऐसे उनके कृपामय मंगल दर्शन अनुभव के बाद से आधार के केन्द्र में कोई अवर्णनीय परिवर्तन आ गया । अनुभूत हुआ और उसके बाद वह सदा बना ही रहा । उत्तरोत्तर जीवन्तरूप में अधिक प्रकाशित, ज्वलन्त रहने लगा था ।

ऐसे परम दर्शन की प्राप्ति के बाद उनका मुग्ध और आह्लादकारक परम चैतन्य से विलप्तित हृदयंगम आकर्षण इतना अधिक तो सजीव चेतनात्मक रूप से जीवन में व्याप्त होता है कि जिसका सातत्य कभी भी टूट नहीं पाता । ऐसा आकर्षण भाव उत्तरोत्तर इतना अधिक गाढ़ होता जाता है कि हम भाव की सहज अवस्था में जा पाते हैं । ऐसा भाव जो पहले सर्जन की सहज अवस्था में और एक में एकाग्र केन्द्रित था, वही भाव उसकी एकाग्रता और केन्द्रितता की संपूर्ण ऊँचाई पर पहुँचता है । उसके बाद उसी भाव का विस्तार होता है । ऐसा भाव बाद में तो किसी सुंदर रमणीय दृश्य, प्राकृतिक नैसर्गिक सौन्दर्य, किसी नदी का खलखल बहता दृश्य, नवपल्लवित होता वृक्ष, सुंदर आरोग्यपूर्ण बालक का दृश्य या ऐसा स्थूल रूप का दृश्य, किसी भावनात्मक विचार का व्यक्तव्य या ऐसा कोई भावनात्मक

भजन—इसी प्रकार के निमित्त प्रगट होते जाते उसी प्रकार के दर्शन द्वारा भाव उत्कट रूप से सचतेन होता जाता है। उस समय अपने आप भाव समाधि लग जाती है और उससे धन्यता का अनुभव होता जाता है। उसकी असर लम्बे समय तक दिन के कर्म व्यवहार में और दैनिक व्यवहार में भी जीवन्त चेतनात्मक रूप में रहा करती है।

('जीवनदर्शन, पृ. ३७८-३७९)

७. सूक्ष्म ऊर्ध्व भूमिका में

जीवनविकास की साधना में अगणित स्थितियाँ आती हैं। अनेक प्रकार की आंतरिक यातनाएँ, वेदनाएँ और पीड़ाएँ आती हैं। परन्तु गुरु शक्ति का कार्य श्रीसद्गुरु का हाथ उसमें अपूर्व सहायता देकर श्रीमोटा को प्रत्येक स्थिति में से बाहर लाते हैं।

श्रीसद्गुरु की सहायता का स्वरूप लाक्षणिक होता है। इससे वह समझ से बाहर ही होता है। श्रीमोटा साधनामार्ग में अपने समग्र पुरुषार्थ द्वारा तप-तपकर 'निर्बल' बन जाते, तब श्रीसद्गुरु अपूर्व 'बल' बनकर आ जाते। संकट के बाद उससे बाहर निकलने का भी रास्ता मिल जाता था।

साधना में एक समय दम घोंटनेवाले अकेलेपन का आता है। श्रीमोटा अनेक बार दलदल में फँसे तब श्रीसद्गुरु ने उन्हें बचाया। इससे हृदय में श्रद्धा दृढ़ हुई। तब भी ऊर्ध्वमार्ग का इस प्रकार का अकेलापन बहुत ही भीषण अनुभव देनेवाला होता है। पूज्य श्रीमोटा इसे इस अनुसार वर्णित करते है :

'ऐसा लगता मानो कि बीच में ही लटक पड़े हैं और एकदम अकेले ही पड़ चुके हैं। आज पर्यन्त शक्ति का जो साथ अनुभव होता था, वह भी मानो दूर-दूर अलग फासले पर दौड़ रहा हो।

तब भी श्रीसद्‌गुरु की यह शक्ति फासले में रहकर भी मुझमें कैसा शौर्य, खुमारी और पौरुष खिल रहे हैं, निरीक्षण कर रही थी । भले अकेला होऊँ, ऐसा लगने पर भी हृदय में तीव्र आतुरता थी । उसका साथ छूटे ऐसा न था । हृदय में उन्मेषित तीव्र जिज्ञासा-अग्नि से और जल्दबाजी प्रचंड वेग से श्रीसद्‌गुरु प्रेरित ही मानो यह कसौटी होगी, ऐसा लग रहा था और इससे पुरुष रूप से उसमें टिका जा रहा था ।'

'इतनी आतुरता होने पर भी सारा ही सुनसान अनुभव हो रहा था । सभी साधन मानो प्राण बिना के हो गये थे और पुरुषार्थ के लिए मस्ती भी विलीन हो गयी थी । इतना ही नहीं मेरा समस्त आधार मानो टूट पड़ा हो ऐसा अनुभव हो रहा था ।'

'दिल में मैं एकदम निराधारता और बेसहारापन अनुभव कर रहा था । आकाश लाँघने की शक्ति विगलित हो चुकी थी । तब भी टिके रहने के लिए संघर्षरत था । मैं एकदम अकेला पड़ गया हूँ और अंतर से मुझे श्रीसद्‌गुरु ने संपूर्ण त्याग दिया है ऐसा भी लगता था ।'

'तब भी टिकने के लिए संघर्षरत रहते हुए इस कसौटी से गुजर रहा था । जितनी आतुरता दिल में थी उसमें उत्कटता प्रेरित करता हुआ ऐसा मान रहा था कि मेरी इस अवस्था का रंग देखकर श्रीसद्‌गुरु भी एक समय मुग्ध हो जाएँगें !'

'फिर ऐसी भी दृढ़ प्रतीति थी कि आज तक एक लम्बी मंजिल काटी है और श्रीसद्‌गुरु के साथ-साथ रहकर ही साथ-साथ कदम उठाये हैं । श्रीसद्‌गुरु के अस्तित्व का सहारा प्राप्त हुआ है, अनुभव किया है । इससे इस मार्ग पर निश्चितता और निर्भयता अनुभूत की है ।'

'अब ऐसा विशुद्ध अकेलापन-नीरवता की जो अवधि की अनुभूति करने का आया था, मानो कि चेतना से अलग पड़ रहा होऊँ ऐसा अनुभव होने पर भी श्रीसद्गुरु चेतना के मूल में से कहाँ जानेवाले हैं ? ऐसी तेज चिनगारी हृदय में चमक रही थी सही ।'

'ऐसी पलों में मेरी नि:सहायता इतनी हद तक बढ़ी थी कि मेरी स्थिति एक पत्ता भी न हिला सके ऐसी हो गई । एकदम निर्बल हो गया होऊँ, ऐसी स्थिति होने पर भी हिम्मत रखकर खड़ा था । ऐसा हो रहा था कि भले ही अकेला पड़ा हूँ, किन्तु सिंह का बच्चा हूँ । मर्द का बच्चा हूँ । भले ही मुझ से कुछ न हो सकता हो और वह भी दूर रहकर मेरा यह तमाशा देखें ।'

इस कठिन पलों में भी श्रीसद्गुरु समझ में न आवे ऐसी कला से उद्धार कर लेते हैं, श्रीमोटा श्रीसद्गुरु के विषय में लिखते हैं कि–

(अनुष्टुप)

'एना परे थई ड्रूल कैंक जोखम, साहस
–खेलेलां मर्द थैने मैं दाखवीने पराक्रम;
छोलायो केटलो क्यां क्यां एनुं भान रह्युं न छे,
सद्गुरु अर्थ होमातां आठे कोठे दीवा ज छे ।'

(विकट स्थितियों से परे हो, कितने सारे जोखम, साहस मर्द बन पराक्रम के साथ खेले; कितना छिलता गया, इसका तो ध्यान ही नहीं रहा है, सद्गुरु निमित्त अष्ट चक्रों पर दीप प्रज्वलित है ।)

८. सगुण दर्शन

श्रीमोटा को १९३४ में द्वैत का साक्षात्कार हुआ अर्थात् सगुण ब्रह्म का यह साक्षात्कार था । स्वयं को हुए इस दर्शन की व्याख्या वेदान्ती परिभाषा में श्रीमोटा ने इस ढंग से समझाया है ।

'सगुण ब्रह्म की प्राप्ति में निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति का समावेश हो ही जाता है, ऐसा नहीं है । निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति में सगुण ब्रह्म की प्राप्ति आ ही जाय ऐसा भी नहीं है । दोनों भिन्न-भिन्न हैं । दोनों के साक्षात्कार अलग-अलग ढंग से होते हैं किन्तु किसी की भी एक प्रकार के साक्षात्कार से मुक्ति अवश्य प्राप्त की जा सकती है । परन्तु दोनों की प्राप्ति अधिक अच्छी गिनी जा सकती है ।

'सगुण साक्षात्कार दर्शन और निर्गुण साक्षात्कार के बीच भेद है, वह समझने जैसा है । सगुण साक्षात्कार तथा निर्गुण यानी अद्वैत का साक्षात्कार उन दो में से एक दूसरे से बढ़कर है, ऐसा नहीं कह सकते । किसी भी साक्षात्कार से मुक्त हो सकते हैं ।'

'दोनों प्रकार का साक्षात्कार हो ही ऐसा कोई निश्चित नियम नहीं है । किसी को निर्गुण का अनुभव पहले होता है और सगुण का न भी हो या बाद में भी हो सकता हैं । किसी को सगुण का अनुभव पहले होता है और निर्गुण का न भी हो । ऐसा होने पर भी दोनों प्रकार के अनुभवों की कक्षा एकदूसरे से उत्तम या निम्न है ऐसा कुछ नहीं हैं ।'

'सही सगुण का साक्षात्कार अर्थात् स्वयं के आधार में चेतन की गुणशक्ति का प्रादुर्भाव होना ।

९. ध्येय-प्राप्ति के संकेत

ई. स. १९३८ के नवम्बर-दिसम्बर में श्रीमोटा करांची में थे । तब बहुत से मित्रों की उपस्थिति में अनेक निमित्त से भावावेश प्रगट होता था और वह लम्बी अवधि तक चलता था । ऐसी स्थिति तीनेक वर्ष तक रही थी । लगातार होते भावावेश से उनमें सहजता

और निरन्तरता प्रगट होने लगती है । बाद में, यह अवस्था सहज स्ववश जीवन्त बन जाती है ।

करांची में श्रीमोटा की मस्त दशा के बहुत से प्रसंग बने और सद्गुरु के आदेश-पालन की भी अभूतपूर्व घटनाएँ भी घटित हुईं । आदेश-पालन की उस सहज साधना से अब ध्येय प्राप्ति का शिखर निकट आने लगा ।

१३ मार्च, १९३९ के दिन श्रीमोटा कानपुर से काशी आये । वहाँ शरीर में तीव्र दर्द शुरू हुआ किन्तु इससे मन लेशमात्र भी अस्वस्थ न हुआ था । उदासी भी न आयी थी । प्रत्यक्ष रूप से मिले कर्म प्रभुकृपा से पूर्ण हो चुके थे ।

काशी में रहने के लिए बंगले की जाँच करनी थी । इस संदर्भ में सभी को मिलना था । अन्य काम की भी व्यवस्था करनी थी । शरीर में दर्द बढ़ते रहने से यह सारा काम सतह पर से चेतना से हो रहा हो ऐसा अनुभव हो रहा था । करांची में मिले बाबा की सूचनानुसार २९वीं मार्च की रात्रि को कुछ घटना तो होनेवाली थी, किन्तु उसके विचार तक मन में नहीं आ रहे थे । शरीर का यह दर्द दिन में भी चीख निकाल दे ऐसा था । रात को दर्द बढ़े ऐसे बहुत से अनुभव हुए ।

इसके विपरीत जीव तो गहरी पैठ बनाता जाता लग रहा था यानी बाह्य चेतना की मात्रा बहुत ही कम हो गयी थी और अंदर की चेतना की जागृति एकदम तीव्रतम हो गयी थी ।

श्रीमोटा ने २९ तारीख की रात को घटना घटने के विषय में अपने साथ जो बहन थी, उसे सूचित किया था । इससे यह बहन कुछ चिन्ता के साथ घूम रही थी । किन्तु २९ मार्च की रात को श्रीमोटा तो आराम से सो रहे थे ।

'रात को एक बजकर दसेक मिनट पहले हमारे बंगले के आगे से 'हरि:ॐ' की पुकार एकाएक सुनाई दी । मुझे ही संबोधित कर यह पुकार दी गयी थी । वह तुरन्त ही समझ आ गया था । यानी मैंने भी सामने से 'हरि:ॐ' की पुकार लगायी । पुकार लगानेवाले भाई सामने से आये । वे संपूर्ण नग्न थे । सिर पर बहुत सारे उलझे हुए बाल थे । नीचे उतरा, तब जाना कि वे मुझे ऐसी मध्यरात्रि में कहीं ले जाना चाहते थे । बहन को एक चिठ्ठी लिखकर ऊपर रख आया कि जिससे मेरी चिंता न हो । मेरी अनुपस्थिति में वह जग गयी थी और मुझे न देखकर सहज चिंताग्रस्त भी हुई थी, परन्तु ऐसा सब करांची में भी हुआ करता था, इससे उसे विश्वास हो गया था कि बाद में सबकुछ ठीक ठाक हो जाएगा । इतना ही नहीं २९ मार्च को 'कुछ' होनेवाला है इसका भी उसे पता था । इसलिए निश्चिंत हो गयी थी ।

उस भाई ने मुझे बतलाया कि मुझे मणिकर्णिका के घाट के सामने की ओर गंगाजी के दूसरे छोर जहाँ उनके गुरु महाराज रहते थे वहाँ जाना था । उन्होंने उन्हें भेजा था और उन गुरुजी के पास मुझे रहना था । मैंने कहा, 'मैं रात को वहाँ आऊँ और सुबह यहाँ लौट आऊँ । इतनी बात मंजूर हो तो मैं आऊँ । मेरा दायित्व यहाँ इस बहनों के साथ रहने का है अर्थात् इसे छोड़कर दूसरा करने जाऊँ तो वह परधर्म है—फिर मुझे भले ही इससे बहुत ही लाभ क्यों न होता हो ।' मेरी यह बात उन नग्न बाबा ने स्वीकार करने से मना कर दिया । इतना ही नहीं करांचीवाले बाबा द्वारा बताये गये ध्यान को करने के लिए भी उन्होंने स्पष्टत: मना किया । 'करोगे तो भयंकर आफत आएगी यदि उस ध्यान को शुरू करो तो अत्यन्त सावधानी रखें । इस विषय में तुम्हारी प्रेमभक्तिवाली

माँ या बहन हो, ऐसी सुकोलम देखरेख में तुम्हें रहना है अथवा हमारे गुरुजी के पास चलो । तुम्हारी सेवा संभाल करेंगे ।''

मैंने कहा, 'अभी तो इन बहनों की देखरेख मुझे करनी है इसलिए एक-दो महीने बाद आऊँगा ।' तो उन्होंने साफ मना किया । मैंने भी उनके गुरु महाराज के पास जाने से स्पष्ट रूप से मना कर दिया । 'करांची में बाबा द्वारा अत्यन्त गुप्त रूप से दी गई विद्या के विषय में प्रयोग करना है । इस विषय में ये भाई यहाँ काशी में कैसे जान गये?' ऐसे अथवा 'क्या सचमुच मुझ पर भयंकर संकट आनेवाला है ?' ऐसे विचार मुझे नहीं आये और इस प्रयोग के विषय में जैसा होनेवाला हो वैसा होने देना ऐसा सोचते हुए मैं घर की दूसरी मंजिल में आ गया और करांची में मिले बाबा के बताये प्रयोग करने बैठ गया ।

अभी प्रारभ हुआ वहीं समग्र चेतन एकाग्र होते हुए अनुभव हुआ । शरीर, मन, दूसरे सभी करण भिन्न-भिन्न हैं, ऐसा स्पष्टरूप से अनुभव होता गया । कुछ ही देर हुई वहाँ तो सिर के मध्यभाग से सख्त गर्मी के झरने बह रहे हों ऐसी चेतना जगी और सारे शरीर में ऐसी असह्य जलन हुई, होश उड़ गए । लगभग बेहोश होकर गिर पड़ा था । जीभ लगभग जल गयी हैं, जैसा लग रहा था । छाती जल रही थी । पेट से एकदम नीचे के भाग तो वह भाग बिल्कुल पूरी तरह जग लगा हो ऐसा लगा । सारा शरीर अग्नि जैसा गरम हो गया था । दूसरे किसी को कुछ पता न था । इसकी असर दो दिन तक रही ।

इन सभी का कुछ अर्थ समझ में नहीं आया । मन में जरा भी उल्टे सीधे विचार पैदा नहीं हो रहे थे । भावना में एक प्रकार की अखण्डितता प्रकट हो चुकी थी । गंगाजी के प्रवाह की तरह

यह भाव निरन्तर लगातार बने रहे । मेरी नाव तो कहाँ लंगर डालेगी यह पता न था । मात्र एक ही लक्ष्य उनकी कृपा से बना था । बाकी तो समुद्र की लहरों की तरह भावना और आनंद के भाव के साथ रोम-रोम में एक ऐसा अकथ्य भाव प्रकट हो रहा था, जिसे शब्दों में लिख पाना संभव नहीं है ।

'इसीलिए तो इष्ट सिद्धि प्राप्त किये बिना रहनेवाला नहीं हूँ, ऐसा दृढ़ जीवन्त विश्वास हो चुका था ।'

१०. ...

२९ मार्च, १९३९ की रात्रि है । रामनवमी का परम कल्याणकारी समय है । श्रीमोटा के जीवन-प्रागट्य का समय भी यही दिन है, वह महाकाल स्वरूप प्रभु द्वारा आयोजित कैसा अपूर्व योगानुयोग है ।

वसंतपंचमी को पूज्य बालयोगीजी द्वारा कराये गये नवजीवन प्रवेश पश्चात के अनंत संग्राम की विकट यात्रा के बाद श्रीमोटा रामनवमी की रात्रि को काशीधाम में अद्वैत के साक्षात्कार का अनुभव करते हैं ।

'मानो कि अनेक कोटि सूर्य का प्रकाश आसपास फैलकर शरीर में भी प्रविष्ट हुआ । उसी समय महासमाधि लग गई । समाधि में से जागकर देखा तो शरीर का गुह्य भाग और उसके आसपास का भाग भी जल गया था ।'

उस वेला से ही मुक्त दशा का प्रारंभ हो चुका । 'I am Omnipresent.' 'मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ ।' ऐसी चेतनात्मक भावना का सर्व प्रकार से विकास प्रवर्तमान था और है ।

उस समय में जो अनुभव हुआ वह भी सगुण का ही एक अनुभव था । किन्तु उसमें से तत्काल हनुमान छलाँग लगाकर अथवा उस हनुमान छलाँग से उसमें से निर्गुण के अनुभव में प्रविष्ट करने का हुआ । उस अनुभव का स्वयं के आधार में प्रतिष्ठित हो जाने पर उसमें संपूर्ण केन्द्रितता जीवन्तरूप से प्रकट होने के बाद उसके भाव का विस्तार हो रहा है, अनुभव होता गया । उसमें वह भावरूप में था, ऐसा भी नहीं कह सकते । जिस-तिस में वह एकरूप प्रवर्तित अनुभव किया जा रहा था । इस प्रकार होते हुए भी स्वयं उन सभी में व्याप्त होते हुए भी अलग हो और एकरूप भी हो ऐसा सतत अनुभव होता जा रहा था । तादात्म्य के चेतन का गुणधर्म उसके बाद जीवन में आने लगा, ऐसा जरूर कह सकते हैं । माता को बालक के प्रति जो तादात्म्यवृत्ति होती है, वह तो प्रकृतिवशात् होती है और वह भी उसमें निरन्तर एकसमान तादात्म्य नहीं होता । बाबर और हुमायूँ का उदाहरण वह भी एक जीव प्रकार का उसके प्रति प्रादूर्भूत उत्कट में उत्कट भाव का गिना जा सके ऐसा तो एकाद बार होता है । जबकि चेतन के गुणधर्म में वे सारे प्रकृतिवशात् नहीं होता और वैसी चेतनात्मक तादात्म्यता निरन्तर एकसमान बनी रहती है ।'

इस प्रकार श्रीमोटा का यह नूतन जन्म है । उनका जीवन 'जीवन तीर्थ' बन गया है । उनमें दिव्य जीवन का प्रागट्य हुआ है । २९ मार्च १९३९ के पश्चात् उनके जीव ने अनेक घटनाओं का निर्माण किया है । इस नूतन जन्म ने जीवन प्रागट्य के अभिनव जीवन, जीवन स्फुलिंग के तेज-चिनगारी की अगोचर तेजोमय अकल्पनीय कला द्वारा लीला का आरंभ किया ।

• • •

विभाग - ७ : अवतरण

१. 'प्रताप पद-रजधूलिका का'

पूज्य श्रीमोटा को अद्वैत का साक्षात्कार २९ मार्च, १९३९ में बनारस में हुआ। उनका यह अनुभव केवल एक पल की घटना न थी किन्तु तब से प्रभुशक्ति उनके द्वारा क्रियामाण हुई ।

उसके बाद वे बनारस से अहमदाबाद हरिजन आश्रम में आये। श्री परीक्षितभाई, श्री हेमन्तभाई आदि मित्रों को मिले। श्रीमोटा ने साधना की बात किसी से नहीं की। साक्षात्कार के बाद आश्रम में मित्रों के साथ में रहने के बाद उन्होंने आश्रम से छह सितम्बर, १९३९ में बिदा ली और करांची जाने के लिए निकले। करांची जाते हुए हैदराबाद स्टेशन से उन्होंने तारीख ७-९-३९ को एक पत्र उनके संगी कार्यकर और मित्र श्री हेमन्तकुमार नीलकंठ को लिखा। उसमें उन्होंने लिखा, ''कल सुबह का प्रेममय वातावरण भुलाया नहीं जा सकता। कितने सारे इकट्ठे हुए थे और वह भी कितने उमंग से, प्रेमभाव से ! ऐसी विदाई मिले ऐसा इतना सभी का प्रेम, उनकी बड़ी से बड़ी कृपा है और ऐसा भी जो कुछ मिलता है, वह सब ज्ञानभक्तिपूर्वक उनके चरणकमल में ही अर्पित करता हूँ। इतनी सारी बहनों के निर्मल प्रेमभाव की तुलना में तो किसी से नहीं की जा सकती है। बाकी आपने तो प्रत्यक्ष देखा है और समझते हो ! इस आश्रम में मात्र छोटी से छोटी चड्डी पहनकर फिरनेवाले बुद्धू जैसा जानबूझकर दिखनेवाला, प्रचलित सभ्यता को न पालनेवाला, गाँधीजी के आश्रम जैसे गंभीर वातावरण में भी जोर से पुकारकर कितनों को ही आघात और वह नहीं

तो आश्चर्य और घृणा की अवमानना भाव पैदा करनेवाला, कितनों को ही अनपढ़ लगनेवाला—तुम्हें स्वयं उसकी जानकारी है या आश्रम की कितनी कन्याएँ मुझे पागल गिनती और कैसा परेशान करतीं ! वहाँ के सभ्य तौर तरीकों में भी बिलकुल सिर मुंडित स्थिति में एकदम नि:संकोचपन से घूमनेवाला अरे ! फटे कपड़े पहनकर जाने पर सेन्ट्रल बैंक में क्लर्क पैसे देने से मना कर दे और इससे मैनेजर से मिलना पड़े ऐसा दीखनेवाला सभी तरह से एकदम गँवार दीखनेवाला और अक्कल होशियारी का मुँह पर चिह्न न दिखाई दे इस तरह 'गधे' की उपमा भी पानेवाला—ऐसा मुझ पर इन सभी का इतना भाव कहाँ से ? यह सब तो तुम बहुत वर्षों के परिचय के कारण जानते हो ।

आश्रम में बहुत बार मेरे साथ एकान्त में बैठने से तुम्हें शांति, आनंद, प्रसन्नता का अनुभव हुआ है, किन्तु तुम जाग्रत रूप से इस मार्ग के प्रवासी नहीं हो, इसलिए वह तुम्हारे साथ का निकट में निकट कर्मसाथी और मित्र के परिचय के कारण कब का मेरे जीवन के विषय में तुम्हें कहने का संभव हुआ होता, किन्तु कुछ भी कहा नहीं । यह सब अब इतने वर्षों बाद स्पष्ट रूप से तुम्हें लिखने का हेतु है कि ऐसा कैसे हो सका, यह जानना तुम्हारे लिए अब आवश्यक है । जिसकी असभ्य पोषाक, हावभाव, वृत्ति, व्यवहार के कारण बहनों (अनजान हो तब भी) को थोड़ी बहुत घृणा उत्पन्न हो ऐसे पर सभी बहनों के प्रेम की बारीश बरसात हो वह कैसे ?

'दीसे बारे मेघो सम बरसतो प्रेम जीवने,
डूबे छे तेमां जे जई बने धन्य बस ते ।'

इतना सारा और ऐसा भाव प्राप्त हो यह तो तुमने प्रत्यक्ष देखा । परन्तु वह किस कारण से ?

वह है प्रताप 'पद' की रजधूलिका का,
ढँढोरा पीटकर जगत को कहूँ ध्यान दो ।

यदि हम 'उसमें' ही प्रेम को एकाग्र और केन्द्रित कर सकेंगे तो फिर दुनिया का प्रेम तो मिलनेवाला है ही ।

परम कृपालु श्रीभगवान ने अब 'इस जीवन का स्वांग' और जीवन प्रवाह एक तरह से बदल दिया है । अब से देखता हूँ कि मुझे उसके निमित्त रूप होकर जो जो स्वजन 'इस' मार्ग पर चलने के उद्देश्य से मिलेंगे उन्हें 'उसकी' कृपा से 'इस' मार्ग का दिशादर्शन देना है ।

२. हरि:ॐ आश्रम

श्रीमोटा के साधनाकाल दौरान एकान्त स्थल के लिए कठिनाई पड़ती थी, ऐसी कठिनाई किसी श्रेयार्थी को न पड़े इसलिए उन्होंने मौन एकान्त मंदिरों की मौलिक योजना बनाई ।

हरि:ॐ आश्रम के लिए श्रीमोटा के अंतर में आदेश हुआ, किन्तु आश्रम बनवाने के लिए पैसे प्राप्त करने पड़ेंगे । लोगों के पास से वे रुपये तो प्राप्त करेंगे किन्तु उनका बदला वे कैसे चुका सकेंगे ? श्रीसद्गुरु ने आलम्बन दिया, 'बदले की चिंता तुम न करो । बदला उन्हें मैं दूँगा ।' और श्रीमोटा ने मौन-एकांत मंदिरो के लिए हरि:ॐ आश्रम की स्थापना की । उनकी प्रेरणा से स्थापित हरि:ॐ आश्रम वर्तमान में गुजरात में सुरत और नड़ियाद में है । इनके अलावा मौन-एकांत मंदिरों योगाश्राम उत्कंठेश्वर, ता. कपडवंज, जि. खेड़ा (पीन : ३८७६१०, दूर-भाष : ०२७१६-२६३७२८/ २९६५८९), श्री हंसदेव आश्रम, बोरभाठा (मोटा) ता. अंकलेश्वर

जि. भरूच (दूरभाष : ०२६४६-२९०१०३), जय शिव आश्रम, बिल्केश्वर महादेव, तापी तट, मांडवी, जि. सुरत (दूरभाष : ०२६२३-२२२५८२), अहमदाबाद के पास शोला में श्री भागवत विद्यापीठ में, सौराष्ट्र में सुरेन्द्रनगर के मानवमंदिर में तथा नड़ियाद में श्री संतराम महाराज के मंदिर में भी हैं ।

हरि:ॐ आश्रम की स्थापना हुई उससे पहले पूज्य श्रीमोटा मौन-एकान्त की साधना हेतु प्रेरित करते थे । (दक्षिण भारत में केरापट्टी में एकान्त स्थान में स्थित मकान में वे साधना के लिए प्रेरित करते थे ।) हरिजन आश्रम की मीरांकुटी (अहमदाबाद) में भी वे मौन रखवाते थे । सुरत के कुरुक्षेत्र में स्थित स्मशान के पास टाट से घेरकर भी मौन एकान्त साधना के लिए अनुकूलता की थी, यानी कि मौन एकान्त साधना के लिए उन्होंने किसी भी साधना और स्थल का योग्य उपयोग किया था ।

श्रीमोटा के आश्रम नदी किनारे स्थित हैं । प्रत्येक स्थान पर स्थापित आश्रमों के पीछे आध्यात्मिक जीवन की साधना का इतिहास प्रवर्तमान है ।

हरि:ॐ आश्रम जिज्ञासुओं को आत्म-मंथनार्थ सभी प्रकार की अनुकूलता प्राप्त करता है । अंधेरे कमरे में श्रेयार्थी को सात, चौदह, इक्कीस या इस क्रम में इच्छित दिनों तक स्वयं को योग्य लगे उस साधन द्वारा मंथन कर सकता है । अभी तक अधिक से अधिक लगातार ३८८ दिन का विक्रम है । उन कमरों में अब तो बिजली के दीये हैं । बाथरूम, पाखाने की भी सुविधा है । भोजन भी समयानुसार सुबह दश बजे, शाम पाँच बजे खिड़की द्वारा पहुँचाने की सुविधा है । मौनखंड से श्रेयार्थी बाहर नहीं आ सकता और न ही चिठ्ठी-अखबार देख सकता है । सुबह चार बजे से रात

के आठ बजे तक स्वयं को योग्य लगे उस ढंग से साधना का अभ्यास कार्यक्रम आयोजित कर स्वयं के विकास के लिए आत्म-मंथन कर सकता है ।

श्रीमोटा संचालित इस मौन मंदिर के एकदम एकांत और अंधकार होते हुए भी दिव्य प्रेमचेतना साधक को अगोचर और गूढ़ रूप से सहायता करती है । इस प्रकार की सहायता के अनेक प्रकार से अनुभव होते रहते हैं । मौन मंदिरों की ये अनुभूतियाँ दिव्य जीवन की संभावनाओं की प्रतीति करानेवाली होती है ।

श्रीमोटा कहते हैं, 'इस मौन एकान्त साधना से जीव एकदम शिव नहीं हो जाता ।' किन्तु उसके सूक्ष्म करणों पर ऊर्ध्व जीवन की अभीप्सा के लिए वज्रलेप के समान संस्कार अवश्य पड़ते हैं । वे संस्कार योग्य समय में परिपक्व हो जाग्रत होते हैं और उस जीव को जीवनविकास का मार्ग प्रतिष्ठित कर देता है ।

हरि:ॐ आश्रम द्वारा पूज्य श्रीमोटा का यह कार्य बहुत ही महान कार्य है । इसका मूल्यांकन किसी बाह्य या स्थूल साधनों से नहीं किया जा सकता । उनकी प्रेमस्वरूप चेतना की सहायता एवं मार्गदर्शन मौन एकान्त में बैठनेवाले साधक को मिला ही करती है । आश्रमों में उपस्थित न भी हो तब भी मौन एकान्त मंदिर में बैठे हुए साधक को उनकी सूक्ष्म उपस्थिति के विविध तथा गूढ़ स्वरूप में अनुभव होता ही रहता हैं । पूज्य श्रीमोटा का यह गूढ़त्व वही श्रीमोटा का स्वरूप है । उसके द्वारा उनका कार्य ठोस रूप से संसार में विस्तरित होता जा रहा है ।

पूज्य श्रीमोटा ने २३ जुलाई, १९७६ को अपने स्थूल देहका त्याग किया । तत्पश्चात आज बत्तीस वर्ष बाद भी मौन एकान्त की साधना के लिए तत्पर श्रेयार्थिओं की संख्या बढ़ती ही रही

है । नड़ियाद और सुरत आश्रम के मौन एकान्त के लिए कमरे में बैठने के लिए स्थिति ऐसी है कि कुछ महीने तक इन्तजार करना पड़ता है । इससे सिद्ध होता है कि पूज्य श्रीमोटा द्वारा प्रेरित की यह साधना पद्धति किसी भी प्रकार की प्रचार-प्रक्रिया के बिना फैल रही है ।

पूज्य श्रीमोटा का स्थूल अस्तित्व न होते हुए भी मौन एकान्त में सात दिन से शुरू करके छप्पन दिन तक बैठनेवाले 'जीव' का मौन एकान्त की अवधि आनंद और उल्लासभरी व्यतीत होती है । और फिर से ऐसा संयोग कब मिलेगा उसकी वह सूक्ष्म तत्परता रखता है । यह हकीकत पूज्य श्रीमोटा की सूक्ष्म चेतनारूप से अनुभवात्मक उपस्थिति सिद्ध करती है ।

३. लोककल्याण की प्रवृत्ति

हरि:ॐ आश्रम प्रेरित लाखों रूपयों के ट्रस्ट की योजनाओं से अब कोई भी अनजान नहीं हैं । श्रीमोटा कहते हैं, 'गुण और भावना के विकास बिना समाज और धर्म नहीं टिक सकते ।' इससे समाज में गुण और भाव यथासंभव व्यापक रूप से खिलें और विकसित हों इसके लिए अभी तक करीब एक करोड़ रुपयों का दान किया जा चुका है ।

पूज्य श्रीमोटा ने १९७६ में देह त्याग किया तब तक में अंदाजन एक करोड़ रुपयों का दान हो चुका था ।

१९७६ पश्चात उनके द्वारा व्यक्त की गई भावना अनुसार गुजरात के अत्यन्त पिछड़े आदिवासी क्षेत्र में जहाँ प्राथमिक शाला का एक भी कमरा न हो वहाँ प्राथमिक शाला के कमरे बनाने के लिए

समाज की ओर से दान का प्रवाह जारी ही रहा । परिणामस्वरूप १९९२ तक में हरि:ॐ आश्रम की ओर से योजनानुसार हुए दान की राशि का आंकड़ा सात करोड़ रुपये तक पहुँच चुका है ।

पूज्य श्रीमोटा के शरीर की स्थूल उपस्थिति नहीं है, उसके बाद किसी भी प्रकार के विज्ञापन बिना ही समाज की ओर से जो दान प्रवाह बह रहा है, इस घटना के पीछे का प्रेरकबल लोक जागृति के लिए श्रीमोटा द्वारा प्रेरित कामों को सिद्ध करने में सहायभूत होने की सद्‌वृत्ति है । किन्तु इसके अलावा इस सच्चाई के पीछे ऐसी उदारवृत्ति को प्रेरित करनेवाले एक गूढ़ चेतनाशक्ति के दर्शन भी हो रहे हैं ।

४. दान की लाक्षणिकताएँ

प्राथमिक शाला के कमरे बनाने के लिए दिये दान की लाक्षणिकताएँ विशिष्ट हैं । देश आजाद हुआ तब से पिछड़े वर्ग के उत्कर्ष के लिए अनिवार्य मुफ्त प्राथमिक शिक्षण की योजना बनी । सरकारी योजना में प्राथमिक शालाओं के कमरे बनाने के लिए कुल खर्च के तीस प्रतिशत हिस्सा पंचायत के फंड में से दें, ऐसा नियम था । गुजरात राज्य के आदिवासी पिछड़े गाँवों में इतना फंड देने की भी क्षमता न थी । पूज्य श्रीमोटा द्वारा प्रेरित योजनानुसार लोकफंड की रकम हरि:ॐ आश्रम की ओर से दी जाती थी । इस प्रकार श्रीमोटा गुजरात के आदिवासी गरीब समाज को सहारा देते रहे । परिणामस्वरूप सरकारी योजना में गति आयी और १९९१ तक गुजरात के अलग-अलग तालुकों के गाँवों में प्राथमिक शाला के लिए ८५३३ कमरे हो पाये ।

पूज्य श्रीमोटा द्वारा प्रेरित इन योजनाओं में गुणवत्ता की कदर करनेवाले पारितोषिक बालकों में, युवकों में साहस, हिंमत, पराक्रम, उदारता, प्रामाणिकता, सहिष्णुता जैसे गुण विकसित हों ऐसी प्रवृत्तिओं का आरंभ और उत्तेजन; स्नानागार में एवं समुद्र में तैरने की स्पर्धाएँ, हरिजन और आदिवासिओं में रही शक्तिओं की कदर करना, गुण और भावना को प्रेरित करनेवाले साहित्य को प्रोत्साहन तथा उसका प्रकाशन, ललितकलाओं को प्रोत्साहन, ज्ञान-प्रवृत्ति के लिए संदर्भ ग्रंथों का प्रकाशन, ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखाओं के कोषों का प्रकाशन, साथ ही ज्ञान-विज्ञान एवं कृषि क्षेत्र में, मेडिकल क्षेत्र में संशोधन प्रेरित करने के लिए अच्छी खासी राशियों का ऍवार्ड प्रदान करने की विशेष योजनाएँ हैं ।

इन सारी योजनाओं के स्वरूप की रचना की गई इसके लिए फंड एकत्र करने के अलावा पूज्य श्रीमोटा ने अपने रोगग्रस्त और पीड़ाकारी रोगवाले शरीर से कार्य किया । १९७० से १९७६ के दौरान १९६६ पश्चात् पूज्य श्रीमोटा के अप्रकाशित पत्र, प्रवचन, सत्संग आदि की पच्चीस जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं । इनमें 'जिज्ञासा', 'श्रद्धा', 'कृपा', 'निमित्त', 'रागद्वेष' आदि जैसे शास्त्र-कक्षा की पुस्तकों का भी समावेश हुआ है । उनकी सभी पुस्तकों की बिक्री की संपूर्ण आय हरि:ॐ आश्रम प्रेरित इस लोक कल्याण की योजनाओं में समर्पित की जाती है ।

पूज्य श्रीमोटा प्रेरित लोककल्याण की इन प्रवृत्तियों की उपकारकता स्वयं स्पष्ट है । तदुपरान्त इन प्रवृत्तिओं के निमित्त अनेक व्यक्ति पूज्य श्रीमोटा के संपर्क में आते हैं । पूज्य श्रीमोटा के साथ संपर्क भी उनके द्वारा होनेवाला एक 'कल्याण' कार्य

है । यह 'कल्याण कार्य' का कारण अलौकिक है । इसके पीछे अनुभवी पुरुष के निमित्त का विज्ञान कार्य करता है ।

इसके अलावा ग्रामीण शैक्षणिक संस्थाओं के छात्रालय और विद्यालयों के मकानों के लिए तथा अन्य शैक्षणिक सुविधाओं के लिए ५,७०,८९,४४३ रुपये और अकाल राहत के लिए रुपए ५६,६८,४११ तथा गुजराती विश्वकोश के लिए दस लाख रुपयों का दान दिया है । (इन सारी प्रवृत्तिओं के लिए ३१ मार्च १९९८ तक ग्यारह करोड़ छः लाख छियासठ हजार और बयालीस रुपए दान में दिये जा चुके हैं ।)

पूज्य श्रीमोटा के हरि:ॐ आश्रमों तथा हरि:ॐ आश्रम प्रेरित समाजोत्थान निमित्त लोककल्याण की प्रवृत्तियाँ ऊर्ध्वचेतना का इस पृथ्वी पर अवतरण है ।

पूज्य श्रीमोटा के अंत:करण तो लगातार, निरन्तर और अखंडित रूप में प्रभु के साथ एकरूप हुए हैं, तब भी उस परम लाक्षणिक परम चेतनात्मा ने अपनी लीला के लिए इन निमित्तों के माध्यम से अवतरण किया है ।

अपने सद्‌भाग्य को सद्‌भाग्यपूर्वक आचरण में लाना, यह हमारी समझ की बात है ।

• • •

पूर्ति : पूज्य श्रीमोटा की आनंदलीला

पूज्य श्रीमोटा का शरीर १९६० से अलग-अलग रोगों से घिरता जा रहा था। ऐसा होने पर भी वे १९७५ तक लोककल्याण के कार्यों की योजना के लिए अविरत काम करते रहे । दिन-प्रतिदिन शरीर के रोगों की पीड़ा बढ़ती गई और वे रोग मिट जाँए ऐसे भी न थे ।

पूज्य श्रीमोटा के शरीर की हकीकत का गूढ़ रहस्य था । उन्होंने (आपश्री) १९७४-७५ के दौरान श्री रमणभाई अमीन के साथ के सत्संग में इसका मर्म व्यक्त किया है । इसका विवरण 'तद्रूपसर्वरूप' नामक पुस्तक में संपादित हुआ है ।

पूज्य श्रीमोटा के हृदय में परमात्मा रूप प्रगट होने के बाद प्रभुमय जीवन की भूमिकाएँ विकसित होती गयीं । पूज्य श्रीमोटा ने बताया कि यदि ज्ञान अनंत है तो विकास भी अनंत है । ऐसे अनंत विकास के तरफ की गति के दौरान गूढ़-सूक्ष्म संग्रामों की भी परम्परा चला करती है । ऐसे श्रीमोटा के अनुभव थे । विकास के ऐसे दौर में पाँच तत्त्वों में से तीन तत्त्व—आकाश, तेज और वायु में प्रभु की सततता का स्वीकार अनुभूत हुआ । मात्र जल और पृथ्वी तत्त्व प्रभु सतता के शरण होने से इन्कार कर रहे थे । इसका एक संग्राम चल रहा था । इसके परिणामस्वरूप भी शरीर में रोगादि प्रगट हुए ।

पूज्य श्रीमोटा के ऐसे अनुभव की विशिष्टता यह थी कि किसी भी रोग का एक भी लक्षण उनके शरीर पर दिखता न था । इसके विपरीत वेदना की स्थिति में भी आपश्री का चहेरा प्रसन्न और तेजस्वी रहा करता था ।

श्रीमोटा के देहत्याग के दसेक दिन पहले आपश्री के पास जाने का अवसर मिला था, तब उनका पेट बहुत फूला हुआ था । आवाज भी मंद हो गई थी । आपश्री के शरीर की स्थिति देखनेवालों को भी उन्हें होने वाली वेदना की कल्पना कंपा डालती । उस समय श्री रामभाई पटेल उनके शरीर की सेवा में उपस्थित थे । श्रीमोटा ने उस समय कहा, 'अभी शरीर की स्थिति गंभीर बन रही है । वे गूढ़ विधियाँ यथास्थान में योग्य परिणाम नहीं ला पा रही हैं या उसकी भूमिका में अभी नकारात्मकपन तीव्र है । इसीसे उसके प्रत्याघात के रूप में शरीर की स्थिति ऐसी हुई । यह बात केवल तुम दोनों को बताता हूँ । अभी सार्वजनिक रीति से प्रगट करने की आवश्यकता नहीं हैं ।' श्रीमोटा की यह बात भी गूढ़ ही थी । हमें उस समय यह समझ में आना भी कठिन था ।

पूज्य श्रीमोटा के शरीर की पीड़ा १९ जुलाई, १९७६ को पराकाष्टा पर पहुँची । उस शरीर को टिकाने के लिए केथेटर रखना आवश्यक था । उसके बाद केथेटर बिना पेशाब भी न हो सके ऐसी स्थिति का निर्माण होते ही आपश्रीने 'स्वेच्छा से आनंदपूर्वक शरीर त्याग' करने का निर्णय ले लिया । २२ जुलाई १९७६ शाम के चार बजे देहत्याग की विधि का आरंभ मात्र छः व्यक्तियों की उपस्थिति में किया । (श्री नंदुभाई शाह, श्री रमणभाई बी. अमीन, श्रीमती धीरजबहन अमीन, श्री रामभाई पटेल, श्रीमती डॉ. कान्ताबहन पटेल तथा श्री राजुभाई पटेल) । २३ जुलाई को जल्दी सुबह १-३० बजे देह-त्याग कर, चेतन रूप में लीन हो गये ।

'इँट चूने का स्थूल स्मारक न करें ।' का आदेश आपश्री ने स्वयं सूक्ष्म रूप में होनेपना व्यक्त किया है । अंतिम तीन वर्षों

से पृथ्वी तत्त्व और जल तत्त्व के साथ चलते संग्राम में पंच तत्त्वों में से बाकी रहे दो तत्त्वों पर भी प्रभु सत्ता विजयी बनी है ।

पूज्य श्रीमोटा का देहत्याग यह तो प्रगट परम पुरुष की आनंद लीला का उत्सव बन गया । देहधारी मनुष्य जीव के लिए भगवान के प्रति अभिमुखता तथा उसे अनुभव करने की आतुरता निर्माण करने की भूमिका तैयार हो गई है ।

श्रीमोटा के देहत्याग बाद मौन एकान्त की साधना का आकर्षण बढ़ा है । उस अवधि अंतर्गत साधक को स्थानकाल का निरपेक्षपन का तथा हृदय में अकारण आनंदानुभव होता ही रहता है । यह तथ्य पूज्य श्रीमोटा के आनंदीपन का समर्थन करता है ।

● ● ●

परिशिष्ट : पूज्य श्रीमोटा का अंतिम पत्र

'सभी सम्बन्धित व्यक्तियों के लिए'

मैं चूनीलाल आशाराम भगत प्रसिद्ध नाम मोटा, निवासी हरि:ॐ आश्रम, नड़ियाद, इससे जानकारी देता हूँ कि मैं सम्मानपूर्वक खुशी से स्वयं स्वेच्छा से अपने जड़ देह का त्याग करना चाहता हूँ । यह देह बहुत रोगों से घिरा है और अब लोक कल्याण के काम में आये ऐसा नहीं है । रोग मिटने की भी आशा नहीं है, इसलिए आनंदपूर्वक शरीर छोड़ना उत्तम है । इसके लिए योग्य पल आने पर मैं ऐसा कर डालूँगा ।

मेरे पार्थिव शरीर का अग्निसंस्कार एकांत में शांत जगह पर, मृत्यु स्थल के निकट में करना और वह भी आप छः लोगों की उपस्थिति में करना, अनेक लोगों को इकट्ठा न करें, ऐसा मैं अपने सेवकों को आदेश देता हूँ ।

मेरी सभी अस्थियाँ भी नदी में प्रवाहित कर दें ।

मेरे नाम पर इँट-चूने से निर्मित कोई स्मारक न बनाया जाय । मेरी मृत्यु के निमित्त जो राशि एकत्रित हो उसका उपयोग गाँवों में शाला के कमरे बनाने में करें ।

चूनीलाल आशाराम भगत
उपनाम 'मोटा'
१९-७-७६

॥ हरि:ॐ ॥

पूज्य श्रीमोटा के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ

जन्म	:	ता. ४-९-१८९८ भाद्रपद कृष्ण चतुर्थी, संवत १९५४
स्थान	:	सावली, जिल्ला वडोदरा (गुजरात)
नाम	:	चूनीलाल
माता	:	सूरजबा
पिता	:	आशाराम
जाति	:	भावसार ।
१९१६	:	पिता की मृत्यु ।
१९०५ से १९१८	:	टुकड़ों में पढ़ाई के साथ कठिन मजदूरी ।
१९१९	:	मैट्रिक उत्तीर्ण ।
१९१९-२०	:	वडोदरा कॉलेज में ।
दि. ६-४-१९२१	:	कॉलेज का त्याग ।
१९२१	:	गूजरात विद्यापीठ
१९२१	:	विद्यापीठ का त्याग । हरिजन सेवा का आरंभ।
१९२२	:	मिरगी की बीमारी से तंग आकर गरुडेश्वर की चट्टान से आत्महत्या का प्रयास, दैवी रक्षा, 'हरि:ॐ' जप से रोग मिटाने का सफल प्रयोग ।
१९२३	:	'तुज चरणे' तथा 'मनने' की रचना ।
१९२३	:	वसंतपंचमी को पूज्य श्रीबालयोगीजी द्वारा दीक्षा । श्रीकेशवानंद धूणीवाले दादा के दर्शन के लिए सांईखेडा गए । रात को स्मशान में साधना और दिनभर प्रभुप्रीत्यर्थ हरिजन सेवा।
१९२६	:	विवाह - हस्तमिलाप के अवसर पर समाधि का अनुभव
१९२७	:	हरिजन आश्रम, बोदाल में सर्पदंश—परिणाम-स्वरूप ७६ घंटे तक अखण्ड 'हरि:ॐ' का जाप किया ।

१९२८	: 'तुज चरणे' के प्रथम संस्करण का प्रकाशन।
१९२८	: प्रथम हिमालय-यात्रा ।
१९२८	: साकोरी के पूज्य श्रीउपासनीबाबा का नड़ियाद में आगमन, उनके आदेश पर साकोरी गये, वहाँ मलमूत्र के बिस्तर में सात दिन ।
१९३०	: मन की नीरवता का साक्षात्कार ।
१९३० से ३२	: इस दौरान साबरमती, वीसापुर, नासिक और यरवडा जेल में । उद्देश्य देशसेवा का नहीं, साधना का । कठोर परिश्रम और लाठी चार्ज के दौरान प्रभुस्मरण-मौन । विद्यार्थियों को समझाने के लिए वीसापुर जेल में सरल गुजराती भाषा में श्रीमद् भागवद्गीता को लिखा–'जीवन गीता' ।
१९३४	: सगुण ब्रह्म का साक्षात्कार ।
१९३४ से १९३९	: इस दौरान हिमालय में अघोरीबाबा के पास गए । धूवाँधार के जलप्रपात के पीछे की गुफा में साधना । चैत्र मास में २१ उपलों की ६३ धुनियाँ प्रज्वलित की, नर्मदा किनारे खुले में । शिला पर नग्न बैठकर साधना, शीरडी के सांईबाबा के प्रत्यक्ष दर्शन–आदेश– साधना के अंतिम चरण का मार्गदर्शन ।
१९३९	: रामनवमी संवत १९९५ काशी में निर्गुण ब्रह्म
दि. २९-३-३९	का साक्षात्कार । हरिजन सेवक संघ से त्यागपत्र। 'मनने' के प्रथम संस्करण का प्रकाशन ।
१९४०	: हवाई मार्ग से अहमदाबाद से कराँची जाने
दि. ९-९-४०	का गूढ़ आदेश ।
१९४१	: माता की मृत्यु ।
१९४२	: हरिजन सेवक संघ से अलग होने पर भी हरिजन कन्या छात्रालय के लिए मुंबई में चन्दा इकट्ठा किया । दो बार सख्त पुलिसमार देहातीत अवस्था के प्रमाण ।

१९४३	:	२४, फरवरी में गाँधीजी के पेशाब के जहरीले जन्तुओं का अपने पेशाब में दर्शन । नैमित्तिक तादात्म्य का अनुभव ।
१९४५	:	हिमालय की यात्रा - अद्‌भुत अनुभव ।
१९४६	:	हरिजन आश्रम, अहमदाबाद मीरां कुटीर में मौन एकांत का आरंभ ।
१९५०	:	दक्षिण भारत के कुंभकोणम् में कावेरी नदी के किनारे हरि:ॐ आश्रम की स्थापना । (१९७६ में देहत्याग के बाद आश्रम बंद कर दिया गया ।)
१९५४	:	सूरत के जहाँगीरपुरा, कुरुक्षेत्र स्मशानभूमि में एक कमरे में मौन एकांत का आरंभ।
१९५५ दि. २८-५-५५	:	नड़ियाद, शेढी नदी के किनारे हरि:ॐ आश्रम की स्थापना ।
१९५६ दि. २३-४-५६	:	कुरु क्षेत्र स्मशानभूमि, जहाँगीरपुरा, सूरत में हरि:ॐ आश्रम की स्थापना ।
१९६२ से १९७५	:	शरीर के अनेक रोग - लगातार प्रवास के साथ ३६ आध्यात्मिक अनुभव ग्रन्थों का लेखन-प्रकाशन ।
१९७६	:	फाजलपुर, मही नदी के किनारे श्री रमणभाई अमीन के फार्म हाउस में दि. २३-७-७६ को मात्र छः व्यक्तियों की उपस्थिति में आनंदपूर्वक देहत्याग । स्वयं के लिए 'इँट-चूने का स्मारक न बनाने का आदेश' और इस निमित्त प्राप्त राशि का उपयोग गुजरात के दूरदराज पिछड़े गाँवों में प्राथमिक पाठशाला के कमरे बनवाने में उपयोग करने की सूचना ।

॥ हरि:ॐ ॥

हरि:ॐ आश्रम में उपलब्ध हिंदी पुस्तकों का लिस्ट

क्रम	पुस्तक	प्र.आ.
१.	पूज्य श्रीमोटा एक संत	१९९७
२.	कैंसर का प्रतिकार	२००८
३.	सुख का मार्ग	२००८
४.	दुर्लभ मानवदेह	२००९
५.	प्रसादी	२००९
६.	नामस्मरण	२०१०
७.	हरि:ॐ आश्रम (श्रीभगवान के अनुभव का स्थान)	२०१०
८.	श्रीमोटा के साथ वार्तालाप	२०१२
९.	विवाह हो मंगलम्	२०१२
१०.	बालकों के **मोटा**	२०१२
११.	विद्यार्थी **मोटा** का पुरुषार्थ	२०१२
१२.	मौनमंदिर का मर्म	२०१३
१३.	मौनमंदिर का हरिद्वार	२०१३
१४.	मौनएकांत की पगडंडी पर	२०१३
१५.	मौनमंदिर में प्रभु	२०१४

●

English books available at Hariom Ashram Surat. January - 2020

No.	Book	F. E.
1.	At Thy Lotus Feet	1948
2.	To The Mind	1950
3.	Life's Struggle	1955
4.	The Fragrance Of A Saint	1982
5.	Vision Of Life - Eternal	1990
6.	Bhava	1991
7.	Nimitta	2005
8.	Self-Interest	2005
9.	Inquisitiveness	2006
10.	Shri Mota	2007
11.	Rites and Rituals	2007
12.	Naamsmaran	2008
13.	Mota for Children	2008
14.	Against Cancer	2008
15.	Faith	2010
16.	Shri Sadguru	2010
17.	Human To Divine	2010
18.	Prasadi	2011
19.	Grace	2012
20.	I Bow At Thy Feet	2013
21.	Attachment And Aversion	2015
22.	The Undending Odyssey (My Experience Of Sadguru Sri Mota's Grace)	2019
23.	Pujya Shri Mota Glimpses of a divine life (Picture Book)	2020
24.	Genuine Happiness	2021

●

" प्रभु ! तुम्हारे इस मंदिर को अच्छा-स्वच्छ रखने के लिए मैं अत्यधिक संघर्ष कर रहा हूँ । मन के विकार, प्राण की वृत्तिओं को तुम्हारे चरणों में समर्पित करना है । इससे कही भी कचरा न रहे, इसके लिए मैं हमेशा यत्न करता ही रहता हूँ । तब भी मन को रुचिप्रद लगे ऐसा काम नहीं हो पा रहा है । तुम्हारे रहने लायक उसे पूरी तरह योग्य कैसे बनाऊँ ?"

"हे प्रभु ! तुम मेरे इस मन को मंत्रमुग्ध कर दो ! जिससे कहीं भटके नहीं और एक जगह स्थिर रहे । प्रभु ! मैं मात्र इतना ही माँगता हूँ । इतना होगा तो इस दिन का भाग्य फलेगा और सुंदर भी दिखेगा !" स्वयं इस साधना के लिए यत्न कभी मंद न हो इसलिए भी प्रभु को प्रार्थना करनी है । हृदय से हृदय की प्रार्थना द्वारा, निवेदन द्वारा, सदगुरु के साथ हृदय का संबंध बंधता है और द्रढ़ होता है ।

'श्रीमोटा', प्र. आ., पृ. ४२

– **श्रीमोटा**

किंमत : रु. १५/-